

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन
मध्यस्थ दर्शन भाग-4

अनुभव दर्शन

● ए. नागराज

मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद)

चतुर्थ भाग

मानव अनुभव दर्शन

प्रणेता एवं लेखक
ए. नागराज

प्रकाशक :

जीवन विद्या प्रकाशन

श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल, अमरकंटक

जिला - शहडोल (म. प्र.)

प्रणेता एवं लेखक :

ए. नागराज

© सर्वाधिकार

प्रणेता एवं लेखक के

पास सुरक्षित

संस्करण : द्वितीय

मुद्रण : गुरु पूर्णिमा विक्रम संवत् 2061, 2 जुलाई सन् 2004.

सहयोग राशि :

30/- रुपये

मुद्रक :

युगबोध डिजिटल प्रिन्ट्स

6 समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)

फोन नं. - 2534278, 2533785

ग्राफिक्स-डिजायनिंग : आकाश कम्प्यूटर, रायपुर दूरभाष-2253532

परिचय

ए. नागराज - एक जीवित अस्तित्व दर्शन

ए. नागराज एक ऐसा नाम है, जो अमरकंटक की वादियों में चुप चुप गूँजते रहता है। दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं, एक वे जो अपना नाम लाउड स्पीकर लगाकर गली मुहल्ले में गुंजाते रहते हैं, दूसरे वे, जिनका नाम प्रकृति के हर स्पंदन के साथ झंकृत होते रहता है। प्रकृति ने जिसे अपनी धड़कनों में पिया हो ऐसा ही एक नाम है - "ए. नागराज"। इसका एक और भी अर्थ है - प्रकृति को भी श्री नागराज बाबा ने अपने अंतःकरण में पिया है, उन धड़कनों को जिया है, प्रकृति की अंतरात्मा का साक्षात्कार किया है - इस तरह तद्गत, तल्लीन हुए बिना, प्रकृति की अंतरात्मा को पहचाना नहीं जा सकता। इसी तल्लीनता का असर है कि प्रकृति भी इस नाम को पीकर पुलकित होती है। एक शायर ने बहुत अच्छा लिखा है।

" हजारों साल नरगिस, अपनी बेनूरी पे रोती है ।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा ॥

शायद यह वही दीदावर है जो इस भारत के चमन में मुश्किल से पैदा हुआ है। इस बाबा में नरगिस का नूर (तेज) और सूरज की रोशनी, जैसे साथ साथ जीती है। सौंदर्य और सूरज जैसे, इस व्यक्ति में साथ-साथ जीवित हो उठे हों।

श्री नागराज बाबा का जन्म कर्नाटक प्रान्त के (उस समय के मैसूर राज्य) एक छोटे से गांव अग्रहार में 14 जनवरी सन् 1920 को, सूरज ढलने के बाद जब रात्रि देवी चुपचाप धरती पर उतर रही थी, तब रात्रि लगभग 6 से 8 बजे के बीच हुआ। यह स्थान वर्तमान में जिला - हासन है। बाबाजी के पिताश्री थे - श्री नरसिंह शर्मा, माँ थी श्रीमती वेंकम्मा। गोत्र भारद्वाज। दक्षिण

भारत के सुप्रसिद्ध वेदपाठी, शास्त्राभ्यासी, कट्टरपंथी, परिश्रमी, घोर सेवाभावी, श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ। हम लोग संस्कृत भाषा में एक सूक्ति पढ़ते हैं - “ब्रह्म जानोति, ब्राह्मणः। अर्थात् ईश्वर को जानने वाला ब्राह्मण होता है। आज तो यह सवाल सर्प की तरह सिर उठाने लगा है - कि क्या सचमुच ब्राह्मण लोग ब्रह्म को, ईश्वर को जानते हैं? अगर ईश्वर को नहीं जानते तो किस बात के ब्राह्मण हैं? ईश्वर के बारे में पढ़ने के लिए बहुत से ग्रंथ हैं, जिसमें वेदों का प्रचलन एवं सम्मान, सर्वाधिक है। बाबाजी का कुल वेदमय रहा - निरंतर वेद ध्वनि, वेद चर्चा होती रहती थी - जैसे घर के छप्पर से भी वेद की ऋचाएं फूट रही हों। परंपरानुसार बाबाजी ने भी अपने मामा चिन्नप्पा से जो इस देश के सुविख्यात प्रकांड पंडित थे - 11 उपनिषदों एवं वेदान्त दर्शन को पढ़ा। उन्होंने उस समय की गंभीर और प्रतिष्ठित श्री विद्या उपासना तंत्र विधि से पूर्णाभिषेक कृत्य को सम्पन्न किया।

बाबा को 16-17 वर्ष की उम्र तक पढ़ने से विरक्ति रही, उसके बाद भी पढ़ने की बहुत प्रवृत्ति नहीं रही। परिवार सहज उपासना अभ्यास में प्रवृत्ति रही। परिवार के सम्मान को यथावत बनाए रखने का उद्देश्य बना रहा।

बाबाजी की मां को आयुर्वेद एवं ज्योतिष शास्त्र का बहुत अच्छा अभ्यास था। अतः बाबाजी ने आयुर्वेद एवं ज्योतिष का अध्ययन अपनी माताजी से ही किया। बाबाजी 3 भाई, 3 बहिनें थीं। बाबाजी अपने भाइयों में मंझले हैं।

परिवर्तन संसार का नियम है। सोया हुआ आदमी भी करवट लेता है, तो जागने के लिए उत्सुक आदमी की जिंदगी में भी परिवर्तन स्वाभाविक था। बाबाजी ने गंभीर साधना के निमित्त पंपापति (हम्पी, आंध्र) में लगभग 1 माह एकान्तवास किया। वे श्री विद्या की उपासना में निमग्न रहे। शक्ति विद्या के मूल स्वरूप का नाम, ‘श्री विद्या’ है। उपासना के लिए श्री देवी को तीन अवस्थाओं में स्वीकारा गया है - बाला, त्रिपुर सुन्दरी, राज

राजेश्वरी । परम्परा में यही तीन अवस्थाएं पाई जाती हैं । इन तीनों अवस्थाओं से इंगित स्वरूप, देवी का बाल्य, यौवन तथा वृद्धावस्था है । ऐसा बताया गया है । बाबा के परिवार में श्री विद्या उपासना तंत्र की परम्परा थी ही । उपासना तंत्र अर्थात् मंत्र से स्वयं अभिभूत होना, मंत्र, यंत्र, पूजा स्थली एवं पद्धति से अभिभूत होना । श्री विद्या का पंचाक्षरी, पंचदशी, राजराजेश्वरी षोडशी मंत्र से बाबा दीक्षित रहे । देवी देवताओं के रूप उन्हें ध्यान में दिखाई पड़ते थे, याने स्पष्ट होते थे । बाबा के अनुसार आदमी का मन ही ध्येय और ध्यान के दो स्वरूपों में काम कर देता है । देवी देवताओं की जीवित मुद्रा भंगिमा दिखाई पड़ती थी । यहां से बाबा कन्नड़ भाषा के लोकप्रिय कवि हो गए । अपनी कविता पाठ से हजारों हजार श्रोताओं को रात-रातभर वे मंत्र मुग्ध करते रहे । लगभग दो वर्षों तक उनका कवि जीवन प्रभावी रहा याने 22 से 24 वर्ष की उम्र तक । लेकिन जनता को रात-रातभर कविता सुनाने से क्या हुआ ? प्रयोजन कुछ दिखायी नहीं पड़ा इसलिए कविता करने से विरक्ति होती गई । उस समय के प्रचलन के अनुसार वे ज्यादातर भक्ति और विरक्तिवादी कविताएँ लिखते रहे । इस बीच वेदान्त दर्शन को समझने की इच्छा होने लगी तो विधिवत उन्होंने अपने मामा लोगों के सान्निध्य में वेदान्त का अध्ययन किया ।

बाबाजी ने अपने गुरु, श्रृंगेरी मठ के पीठाधीश्वर श्री चंद्रशेखर भारती के कहने पर सन् 1941-42 में भगवान शिव की मोक्षपुरी काशी में रहकर साधना की । वहां भी वे भिक्षा मांगकर नहीं, अपनी रोटी स्वयं कमाते, शेष धन को जरूरत मंदों में बांट देते तथा ध्यान जप करते रहे । दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध संत श्री रमण महर्षि के प्रति भी बाबाजी की बड़ी आस्था रही । बाबाजी ने रमण महर्षि के दर्शन कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया । पर समाधान नहीं मिला, तृप्ति नहीं मिली ।

काशी से लौटकर 22 वें वर्ष में सन् 1942 में बाबाजी का विवाह श्रवण बेलगुड़ा के श्री हिरगना हल्ली मंजैया की एकमात्र संतान सौ. नागरत्ना देवी के साथ सम्पन्न हुआ । श्री नागरत्ना

देवी का जन्म आश्विन नवरात्रि में शुक्ल पक्ष चतुर्थी तिथि में याने 10-10-1926 को हुआ था । विवाह के पश्चात् सन् 49 तक बाबाजी मैसूर, बैंगलोर, मद्रास में रहे । उन्होंने वहां पेंसिल बनाने का एक कारखाना लगाया । सन् 1939 से सन् 1949 तक इस तरह जीवकोपार्जन चलते रहा । सन् 1949 के बाद मन इस कार्य से उचटने लगा । आजादी के बाद संविधान को देखने पर उसमें राष्ट्रीय चरित्र का कोई स्वरूप नहीं मिला ।

राष्ट्रीय चरित्र अर्थात् राष्ट्र के सभी मनुष्यों के आचरण की एकरूपता का कोई स्वरूप इसमें नहीं मिला । देश, समाज की दयनीय हालत और अपने भीतर उठे प्रश्नों से बेचैनी बढ़ती गई । फलस्वरूप इन सब मामलों में शोध अनुसंधान की जरूरत है ऐसा उन्हें लगते रहा । साथ ही इस धरती की मानव परंपरा में मैं भी एक जिम्मेदार व्यक्ति हूँ - मुझे ही यह शोध अनुसंधान में प्राण लगाना चाहिए - ऐसा गम्भीर भाव उन्हें मथता रहा ।

उस समय के सुप्रसिद्ध योगी अरविंद, महात्मा गांधी, महर्षि रमण, सभी से मिलकर बाबाजी, अपनी जिज्ञासा शान्त करने की आशा लगाए रहे, पर तृप्ति नहीं मिली । किसी को अपने प्रश्नों से निरुत्तर कर देना उनका आशय नहीं था, बल्कि वे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते थे अपने लिए तृप्ति । राष्ट्रीय आचार संहिता का स्वरूप क्या है, मनुष्य में बंधन और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? यही मूलभूत प्रश्न थे उनके जीवन में । अपने प्रश्नों का उत्तर खोजना, इसके लिए अनुसंधान करना, उनकी जिम्मेदारी थी । अतः उन्होंने अपना घरबार, कारखाना, मित्र, परिजन सब छोड़ दिया । वन्दनीया माताजी (उनकी सहधर्मिणी) भी उनके साथ सर्वस्व त्यागकर, अमरकंटक की पुण्य भूमि में भगवती नर्मदा के उद्गम स्थल पर पहली बार आईं । उस दिन 31 दिसम्बर सन् 1949 की रात्रि थी । रात सन्नाटे में घिरी अमरकंटक की एकान्त पहाड़ियाँ । रात के सन्नाटे को चीरती मंदिर की टुनटुनाती हुई आरती की घंटियाँ । सब कुछ नया नया था और मन में वही दहकते सवाल की तपन थी । दूसरे दिन सन् 1950 का पहला दिन था अर्थात् 1 जनवरी सन्

1950 |

ऊषा ने अंगड़ाई ली । जीवन ने भी करवट ली हो जैसे । विशाल फैले हुए वन, नर्मदा का शान्त उदगम, सुबह से शाम तक सन्नाटा, थोड़े से लोग और प्रकृति, सन्नाटा, एकान्त के बीच जीता हुआ आदमी ? यह आदमी क्या है ? परमात्मा क्या है ? प्रकृति क्या है ? इनका आपस में कोई सम्बन्ध भी है ? सवाल ही सवाल फणीधर सर्प की तरह फुफकारते हुए सवाल ही सवाल - उत्तर कहीं नहीं । सर्पिल सवालों के बीच तनकर खड़ा एक अकेला आदमी, जैसे भगवान शिव के अंग अंग में नाग लिपटे होते हैं । सवाल डसते भी हैं और आदमी को अपनी फुफकार से जगाते भी हैं । यह सवालों की फुफकार से जागे हुए एक आदमी की अंतर्कथा है ।

मैं महीनों इन पहाड़ियों में घूमते रहा हूँ - एक अजीब सी चुप उदासी के सिवा, इन पहाड़ों और जंगल की आत्मा का कुछ पता नहीं चलता है । इन गुमसुम पहाड़ियों में ब्रह्मगिरि पर्वत पर बाबा लगातार 19 वर्षों तक तरह-तरह की तपस्या में निमग्न रहे । तब इन पहाड़ियों ने अपना हृदय खोल दिया ? प्रकृति का अनुपम सौंदर्य उजागर हुआ । अस्तित्व सहज अंतरात्मा ने अपने बंद दरवाजे खोले - अस्तित्व का प्रयोजन स्पष्ट हुआ - मानव जीवन के साथ उसका संबंध - उजागर हुआ । प्रकृति और आदमी जिस सत्ता में संचालित उद्भासित हैं, वह "व्यापक" उद्भासित हुआ । साधना की सर्वोच्च अवस्था निर्विकल्प समाधि के अनुभव से वे एकाकार हुए । निर्विचार अवस्था - मनुष्य के लिए आश्चर्यजनक अनजाना । समाधि में प्रश्न खो जाते हैं, पूछने वाला गुम हो जाता है ।

पर वे जो चाहते थे, उसका उत्तर उन्हें समाधि में भी नहीं मिला । मौन और भक्ति-विरक्ति के बदले वे प्रयोजन को खोजते रहे । पातंजल योग सूत्र में लिखित, "संयम" नाम की एक स्थिति है । बाबा ने लगभग 6 माह तक आकाश में संयम किया । तब अचानक सृष्टि का संपूर्ण रहस्य, मानव जीवन का प्रयोजन, उसका स्वरूप, परमात्मा प्रकृति और परमात्मा की स्थिति - सब एकदम

स्पष्ट हो गए । इससे उनको परम तृप्ति मिली, परम विश्राम को वे उपलब्ध हुए । जो उनको मिला मूल प्रश्न के उत्तर के रूप में बंधन, जीवनगत भ्रम के रूप में पीड़ित होने की घटना और जीवन ही जागृत होकर भ्रम मुक्ति का अनुभव करने की सुखद घटना स्पष्ट हुई जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण आचरण केन्द्रित सार्वभौम आचार संहिता रूपी संविधान मिला । उसे ही वे अपने मध्यस्थ दर्शन "सह-अस्तित्ववाद" में पिछले 26 वर्षों से लोगों को बताते रहे हैं । उसी की एक कड़ी है यह "मानव अनुभव दर्शन ।"

एक आश्चर्यजनक, किन्तु अत्यंत साधारण से किसान दिखने वाले एक सद् गृहस्थ साधु के परम साक्षात्कार से निसृत परम ज्ञान, जीवन ज्ञान-अस्तित्व दर्शन-मानवीयतापूर्ण आचरण की यह माला - आम आदमी को अर्पित है । उन्हें देखकर डर नहीं लगता बल्कि अपने में एक आत्म विश्वास जागता है कि बाबा जैसा एक साधारण व्यक्ति, जीवन के परम सत्य को जब पा सकता है, तो हम लोग भी क्यों नहीं पा सकते ? हम सत्य को उपलब्ध हो जाएं, यही आशा है ।

अमरकंटक की पहाड़ियां इस व्यक्तित्व की सुगंध से भर गई हों जैसे उसी सुगंध की एक लहर है, एक फैलाव है यह प्रबंध-आपकी अपनी अस्मिता आपके अपने वैभव का संगीत, जो बाबा की चिंतन रूपी बांसुरी से - आनंद के आमंत्रण बिखेर रहा है आओ, अमृत के पुत्रों - तुम्हारा स्वागत है - इस ज्ञान के सुगंधित सागर में सराबोर होने - अपने 'स्व' को पहचान कर उसके वैभव में आल्हादित होने का आमंत्रण है । आज ईसा के शब्द कितने सटीक हो गए हैं, "मांगो, तुम्हें मिलेगा, खोजो तुम पाओगे, खटखटाओ, तुम्हारे लिए खोल दिया जावेगा"

अभ्युदय संस्थान

अछौटी

जिला-दुर्ग (छ.ग.)

राजन

प्राक्कथन (द्वितीय संस्करण)

यह अनुभव दर्शन सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभूति और उसकी महिमा व गरिमा की अभिव्यक्ति है। अस्तित्व में सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास, विकास क्रम में विकास ही जीवन घटना एक यथार्थ स्थिति है। जीवन जागृति ही अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रकाशन है। इसी क्रम में मनुष्य अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होना, अनुभूत होता है। अस्तित्व में अविभाज्य अंगभूत मनुष्य में ही जीवन जागृति की अभिव्यक्ति होने की संभावना नित्य समीचीन है। प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए अनुभव-क्षमता समान रूप से विद्यमान है, इसी सत्यतावश अनुभवाभिव्यक्ति की पुष्टि सार्वभौम रूप में होती है। अस्तु अनुभव दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए प्रामाणिकता का अनुभव कर रहा हूँ। प्रामाणिकता ही आनंद और अनुभव सहज अभिव्यक्ति है।

यही संप्रेषणा में समाधान, व्यवहार में न्याय और उसकी निरंतरता है। अनुभव जीवन में जागृति का द्योतक है। सम्पूर्ण क्रिया, चाहे वह जड़ हो अथवा चैतन्य हो, स्थिति में बल और गति में शक्ति के रूप में वर्तमान है क्योंकि स्थिति के बिना गति सिद्ध नहीं होती। इसी सत्यता के आधार पर, अनुभव ही स्थिति में आनन्द अर्थात् प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति ही अर्थात् गति में प्रमाण तथा समाधान है।

अस्तु ! अध्ययनपूर्वक जीवन जागृति व अनुभव बल के अर्थ में यह अभिव्यक्ति सहज-सुलभ हुआ है। इसे मानव को अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

अमरकंटक

- ए. नागराज

चैत्र शुक्ल नवमी मंगलवार

प्रणेता

श्री संवत् 2061 तदनुसार

मध्यस्थ दर्शन “सहअस्तित्ववाद”

दिनांक 30.3.2004

अनुक्रमणिका

मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व	1-7
अध्याय एक	8-13
अध्याय दो	14-27
अध्याय तीन	28-38
अध्याय चार	39-43
अध्याय पाँच	44-47
अध्याय छः	48-52
अध्याय सात	53-58
अध्याय आठ	59-62
अध्याय नौ	63-69

मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व

1. उद्घोष

- जीने दो और जियो ।

2. मंगल-कामना

- भूमि: स्वर्गताम् यातु,
मनुष्यो यातु देवताम्,
धर्मो सफलताम् यातु,
नित्यं यातु शुभोदयम् ॥
- भूमि स्वर्ग हो,
मनुष्य देवता हों,
धर्म सफल हो,
नित्य मंगल हो ॥

3. अनुभव ज्ञान

- सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति, सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़-चैतन्य इकाइयाँ अनन्त ।
- व्यापक (पारगामी व पारदर्शी) सत्ता में सम्पृक्त सभी इकाइयाँ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म सम्पन्न, त्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में हैं ।

4. सिद्धान्त

- श्रम-गति-परिणाम ।

5. उपदेश

- जाने हुए को मान लो ।
माने हुए को जान लो ।

6. स्थिति

- स्थितिपूर्ण सत्ता में सम्पृक्त स्थितिशील प्रकृति ।

7. प्रमाण

- अनुभव व्यवहार प्रयोग
- अनुभव ही प्रमाण,
प्रमाण ही समझ,
समझ ही प्रत्यक्ष,
प्रत्यक्ष ही कार्य-व्यवहार,
कार्य-व्यवहार ही प्रमाण,
प्रमाण ही जागृत परम्परा,
जागृत परम्परा ही सह-अस्तित्व ।

8. यथार्थ

- ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत ।
- ब्रह्म (सत्ता) व्यापक, जीवन पुंज अनेक ।
- जीवन पुंज में अविभाज्य आत्मा ।
जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वैभव ।
- ईश्वर (व्यापक) एक, देवता अनेक ।
- मानव जाति एक, कर्म अनेक ।
- भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक, राज्य अनेक ।
- मानव धर्म एक, समाधान अनेक ।
- जीवन नित्य, जन्म-मृत्यु एक घटना ।

9. वास्तविकता

- विकास क्रम-विकास ।
- जागृति क्रम-जागृति ।
- जागृति पूर्वक अभिव्यक्तियाँ और परम्परा ।

10. ज्ञान

- जीवन ज्ञान ।
- सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान ।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ।
- अनुभव ही ज्ञान ।

11. अनुसंधान

- गठन-पूर्णता ।
- क्रिया-पूर्णता ।
- आचरण-पूर्णता ।

12. आधार

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति (सह-अस्तित्व) ।

13. प्रतिपादन

- भौतिक रासायनिक प्रकृति ही विकास क्रम में है । जीवन विकसित रूप में चैतन्य इकाई है ।
- चैतन्य इकाई अर्थात् जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परम्परा में अखण्ड सामाजिकता सहज प्रमाण ।
- सतर्कतापूर्ण मानवीयता एवं सामाजिकता ।
- सतर्कतापूर्ण सजगता सहित देव-मानवीयता ।
- सजगतापूर्ण सहजता सहित दिव्य-मानवीयता ।
- गठन-पूर्णता, क्रिया-पूर्णता एवं आचरण-पूर्णता ।

14. सत्यता

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति ही सृष्टि ।
- प्रकृति ही नियति ।
- नियति ही व्यवस्था ।
- व्यवस्था ही विकास एवं जागृति ।
- विकास एवं जागृति ही सृष्टि है ।
- नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ऐश्वर्य (सह-अस्तित्व), ऐश्वर्यानुभूति ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन ही नियम है ।
- भ्रमित मनुष्य कर्म करते समय स्वतन्त्र एवम् फल भोगते समय परतन्त्र है ।
- जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय स्वतंत्र है ।

15. मानव शरण

- अखण्ड-सामाजिकता (सह-अस्तित्व) ।

16. मानवीय व्यवस्था

- मानवीयता ।

17. व्यक्ति में पूर्णता

- क्रिया-पूर्णता ।
- आचरण-पूर्णता ।

18. समाज में पूर्णता

- सर्वतोमुखी समाधान ।
- समृद्धि ।
- अभय ।
- सह-अस्तित्व ।

19. राष्ट्र में पूर्णता

- कुशलता ।
- निपुणता ।
- पाण्डित्य ।

20. अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता (अखण्ड राष्ट्र)

- मानवीय संस्कृति-सभ्यता-विधि-व्यवस्था में एकात्मता (सार्वभौमता) ।

21. मानव धर्म

- सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द ।

22. धर्मनीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ के सदुपयोग हेतु व्यवस्था ।

23. राज्य नीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ की सुरक्षा हेतु व्यवस्था ।

24. अनुगमन और चिन्तन

- स्थूल से सूक्ष्म ।
- सूक्ष्म से कारण ।
- कारण से महाकारण ।

25. जाग्रति का प्रमाण

- अमानवीयता से मानवीयता ।
- मानवीयता से देव-मानवीयता ।
- देव-मानवीयता से दिव्य-मानवीयता ।

26. मांगल्य

- जीवन मंगल ।
- उदय मंगल ।
- समाधान मंगल ।
- जागृति मंगल ।
- अनुभव मंगल ।

27. सर्व मांगल्य

- मनुष्य के चारों आयाम (कार्य, व्यवहार, विचार व अनुभूति), पाँचों स्थिति (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) तथा दस सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में निर्विषमता (सामरस्यता) एवं एकसूत्रता ।

28. महा मांगल्य

- सत्यानुभूति जागृति (भ्रम मुक्ति) ।

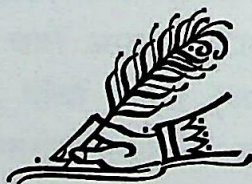
29. उपलब्धि

- सह-अस्तित्व में स्थापित मूल्यों की अनुभूति ।
- समाधान, समृद्धि व सर्वशुभ ।
- भ्रम मुक्ति और नित्य जागरण ।

- ए. नागराज

अध्याय-एक

- ब्रह्म सत्य जगत शास्वत ।
- मानव दृष्टा पद में जागृति प्रमाण सम्पन्न है ।



अब ब्रह्म जिज्ञासा है। ब्रह्म शब्द के अर्थ को स्पष्ट करना है।

“मैं” और “मेरा” के संदर्भ में निर्भ्रान्ति अथवा असंदिग्धता के अर्थ में ब्रह्म जिज्ञासा है।

चैतन्य इकाई के मध्यांश की संज्ञा “मैं” है जो आत्मा के नाम से अभीहित है।

“मैं” से मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि का वियोग नहीं है। इनमें आत्मानुगामी बनने योग्य क्षमता की प्रस्थापन प्रक्रिया ही साधना है। इन चारों के अविभाज्य समुच्चय की संज्ञा “मेरा” और जाग्रति है।

यही जीवन जाग्रति है।

देह और देहकृत परिणामों का योग-वियोग प्रसिद्ध है जो मेरे द्वारा निर्मित था, स्वीकृत रहा है।

‘यह’ (ब्रह्म) व्यापक है, जबकि प्रत्येक क्रिया सीमित है। यह (ब्रह्म) सत्ता है।

‘यह’ अपरिणामी और अस्तित्व पूर्ण है, जबकि प्रत्येक क्रिया परिणाम पूर्वक स्थितिशील है।

‘यह’ शब्दों द्वारा पूर्णतया उद्घाटित नहीं है। केवल शब्दों के द्वारा (ब्रह्म) का निरूपण अपूर्ण है। ‘यह’ (ब्रह्म) की अप्रचुरता का नहीं अपितु शब्द की अक्षमता का द्योतक है। शब्द की उत्पत्ति तथा स्थिति पाई जाती है ‘यह’ ब्रह्म केवल साम्य और व्यापक, पूर्ण, अस्तित्व ही है। क्योंकि ब्रह्म व्यापक वस्तु ही है, जीवन में भी पारगामी है। शरीर में भी पारगामी है। जीवन को ही व्यवहार में न्याय और समाधान के रूप में प्रमाणित होना है, व्यवहार में प्रमाणित होने के क्रम में ज्ञान

* अभिभूति - अभिभूति अनुभव में तदाकार, तदरूप होने से है।

विज्ञान विवेक पूर्वक ही जिम्मेदारी, भागीदारी करना होता है। तभी ब्रह्म निरूपण पूरा संप्रेषित, अभिव्यक्त होना पाया जाता है। इस प्रकार परम सत्य रूपी अस्तित्व, व्यापक रूपी ब्रह्म में ही हर मानव प्रयोग, व्यवहार व अनुभवपूर्वक प्रमाणित होने की व्यवस्था है। मानव की अभिव्यक्ति में भाषा एक आयाम है। मानव अपने सम्पूर्णता के साथ ही पूर्ण वस्तु को अभिव्यक्त करता है। यही पूर्ण जाग्रति का प्रमाण है।

“मैं” निर्भ्रमित अवस्था में आत्मा हूँ। क्योंकि अनुभवमूलक विधि से ही जीवन जाग्रति का प्रमाण होना पाया जाता है। अनुभव मूलक विधि से बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन अभिभूति*, अनुगमित रहना पाया जाता है। अर्थात् अनुभव के अनुरूप प्रतिरूप में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, अनुप्राणित रहते हैं। अनुप्राणित रहने का तात्पर्य प्रेरित, अभिव्यक्त रहने से है। इस प्रकार निर्भ्रम अवस्था में ‘मैं’ अर्थात् आत्मा होने का प्रमाण स्पष्ट होता है। इसे हर नर-नारी जाग्रतिपूर्वक प्रमाणित कर सकता है। भ्रमित अवस्था में जीवन में अहंकार हूँ जो अजाग्रति और भ्रम का द्योतक है। भ्रमित बुद्धि ही अहंकार है। भ्रमित बुद्धि अपने तात्त्विक स्वरूप अर्थात् यथास्थिति स्वरूप में आत्मबोध रहित होना ही रहा, इस घटना का नाम अहंकार है। ऐसी घटना के कारण रूप में शोध और अनुसंधान की आपूर्ति रही। मनाकार को साकार करने के पश्चात् भी दुःखी होने का कारण यथावत् रहा। मनः स्वस्थता को प्रमाणित करने व उसकी निरन्तरता में मानव परम्परा में प्रत्येक नर-नारी अनुभव मूलक विधि से आत्मबोध सहित प्रमाणित होना सहज है और आवश्यक है।

आत्म बोध और ब्रह्म अनुभूति के लिए सहज जिज्ञासा है। यह मानव परम्परा में जाग्रत शिक्षा संस्कार पूर्वक समाधानित सार्थक होना पाया जाता है।

‘यह’ ब्रह्मानुभूति सर्वमानव का ईष्ट है, क्योंकि अनुभव मूलक विधि से ही हर नर-नारी यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता को प्रमाणित

करते हैं।

‘यह’ सबको सर्वदा सर्वत्र एक सा प्राप्त है। जबकि हर इकाई दूसरी इकाई के लिये प्राप्य है।

प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य का आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है।

आत्मा ब्रह्म से भिन्न होते हुये भी नेष्ट नहीं है क्योंकि प्रकृति का सर्वोच्च (विकासपूर्ण) जाग्रतिपूर्ण अथवा जाग्रतिशील अंश ही आत्मा है। यह चारों अवस्थाओं में प्रत्यक्ष है।

नेष्ट का तात्पर्य ब्रह्म (व्यापक) और आत्मा में चैतन्य ईकाई मध्यांश के रूप में होते हुए अनुभव योग्य क्षमता नित्य वर्तमान है। जीवन इकाई का विघटन नहीं होता। जीवन अमर है।

विकास भेद से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार ही अवस्थाओं में दृष्टव्य है।

प्रत्येक इकाई प्रकृति का अभिन्न अंग है।

ज्ञानावस्था की निर्भ्रम इकाई में आत्मा के अमरत्व, शरीर के नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियमों का ज्ञान है। अन्यथा वह उसके लिए बाध्य है।

प्रकृति (क्रिया समुच्चय) एवं पुरुष (ब्रह्म) का सह-अस्तित्व अनादि काल से अनन्त काल तक है।

प्रकृति अनंत इकाइयों का समूह है।

प्रत्येक इकाई का विकास व ह्रास उसकी गति से उत्पन्न सापेक्ष शक्ति के अंतर्नियोजन तथा बहिर्गमन की प्रक्रिया पर आधारित है।

शक्ति का अंतर्नियोजन ही जाग्रति (विकास) है।

मूल इकाई का तात्पर्य परमाणु से है।

ब्रह्मानुभूति के योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक ही जाग्रति व भ्रम की संभावना बनी रहती है।

ब्रह्मानुभूति पूर्ण क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से संपन्न होना ही भ्रम मुक्ति है। चैतन्य इकाई का जड़ की आस्वादनापेक्षा से मुक्त होना एवं प्रेममयता में अथवा सत्ता में अनुभूत होना ही मोक्ष है। दया, कृपा, करुणा सहज संयुक्त प्रमाण ही प्रेम है।

ब्रह्मानुभूति बोध मात्र का सहज आनंद ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का आस्वादन सुख की उपेक्षा है जिसे “पर वैराग्य” की संज्ञा दी जाती है।

आनंद की निरंतरता ब्रह्मानुभूति का आद्यान्त लक्षण है, जो अधिक, न्यून व अभाव से मुक्त है। अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही संपूर्ण भाव सम्पन्नता और प्रमाण है।

अजाग्रत मानव इकाइयों के जाग्रति में सहायक होना भ्रम मुक्त एवं जाग्रत मानव इकाइयों का स्वभाव है।

मोक्ष पद ही नित्य, अन्य पद अनित्य है।

मोक्ष पद में ही आनंद की निरंतरता है। अन्य किसी पद में नहीं।

आत्मा सहज अभीष्ट ब्रह्म में अनुभव “यह” है। इसलिये, आत्मा अपने आश्रित बुद्धि, चित्त, वृत्ति एवं मन से प्रभावित नहीं है।

आत्मा मध्यस्थ क्रिया और ब्रह्म मध्यस्थ सत्ता है।

सम-विषमात्मक क्रिया तथा शक्ति से आत्मा प्रभावित नहीं है।

आत्मा ही “मैं” और “मैं” का इष्ट ब्रह्म है।

ब्रह्मानुभूति सम्पन्न मानव ही जड़ प्रकृति की आसक्ति से मुक्त है जिसका जीवन भ्रम मुक्त अवस्था में है।

जीवनमुक्त इकाई (भ्रममुक्ति) में भूत, भविष्य की पीड़ा एवं वर्तमान का विरोध नहीं है। यही अन्य के सुधार के लिये व जाग्रति के लिये प्रेरणा स्रोत हैं।

‘यह’ में अनुभव ही परमानंद है।

‘यह’ में अनुभव की तृष्णा प्रत्येक मानव इकाई में विद्यमान है।

‘यह’ में अनुभव आत्मा को और बोध बुद्धि को होता है।

‘यह’ ही शून्य, ज्ञान और साम्यसत्ता है। इसलिए ‘यह’ समस्त क्रिया का आधार है।

इसे ‘ज्योति’ शब्द से भी जाना जाता है। ब्रह्मानुभूति में प्रकाश का अभाव नहीं है, बल्कि शाश्वत प्रकाश में अनुभव है। व्यापक में अनुभव ही शाश्वत प्रकाश है। क्योंकि सह-अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

इसलिए ‘यह’ अनुभूति मूलक सत्यापन केवल साम्य लक्ष्य एवं कार्यक्रम की ओर इंगित है।

आप्तता ही प्रमाण सहित उपदेश (उपाय सहित आदेश), का कारण है।

जीवन मुक्त (भ्रममुक्ति) में आप्तता का अभाव नहीं है।

नित्यम यातु शुभोदयम्

अध्याय - दो

असंग्रह, स्नेह, विद्या,
सरलता, सहजता, अभय ही क्लेश
से मुक्ति और हर्ष के लक्षण हैं ।
ये ही समाधान एवं समत्व के भी
लक्षण हैं जिनके अस्तित्व की
निरंतरता पायी जाती है ।



ब्रह्म ज्ञान का अप्रचलन, इसकी अप्रचुरता तथा अप्रतिष्ठा नहीं है। ये केवल इसके योग्य अधिकार (क्षमता, योग्यता, पात्रता) के अभाव के लक्षण हैं।

जो अस्तित्व में है इसकी समझ न होने मात्र से इसमें अथवा इसकी कोई क्षति सिद्ध नहीं होती।

अस्तित्व में पायी जाने वाली वस्तु के स्वभाव, धर्म, गुण एवं समुचित व्यवहार के अध्ययन तथा ज्ञान पूर्वक किये गये अभ्यास से ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता का विकास होता है।

ब्रह्म ही सत्य, सह-अस्तित्व ही परम सत्य, सह-अस्तित्व में अनुभव ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व ही आनंद है, आनंद ही अनुभव प्रमाण है। अनुभव ही व्यवहार और प्रयोग सहज प्रमाण है। उत्पादन समत्व नियम पूर्वक, व्यवहार समत्व न्यायपूर्वक, विचार समत्व समाधान पूर्वक एवं धर्म पूर्वक, अनुभव का समत्व ब्रह्म सहज व्यापकता में प्रत्यक्ष है।

वस्तु, क्रिया, रचना और व्यवहार की स्थिति सर्वकाल में परिणाम एवं परिमार्जन पूर्वक विकास एवं जागृति के लिए व्यस्त है। ब्रह्म, सत्ता सहज अस्तित्व देश-कालाबाध है। इसलिये मानव परिमार्जनशील है, उसी में अधिकार व अनाधिकार योग्यता और अयोग्यता अपेक्षाकृत प्रक्रिया से अभिप्रेत एवं अभिव्यक्त है।

सभी परमाणु-ग्रह-नक्षत्रादि ब्रह्मावेष्ठित, ब्रह्म में समाहित एवं संपृक्त हैं।

प्रत्येक इकाई गठनपूर्वक इकाई है। प्रत्येक गठन में समाहित प्रत्येक अंश के सभी ओर ब्रह्म है। ब्रह्म प्रत्येक इकाई व अंशों में पारगामी है।

व्यापक सत्ता पूर्ण ही है। जिसकी अनेक संज्ञाएं हैं।

आकाश और शून्य भी ब्रह्म सहज नाम हैं।

ब्रह्मानुभूति पर्यन्त कोई भी मानव परिमार्जन से मुक्त नहीं है।

ज्ञानावस्था की समस्त इकाइयों का मूल लक्ष्य ब्रह्मानुभूति सहज प्रमाण ही है। ब्रह्मानुभूति ही सह-अस्तित्व में अनुभव है।

जीव और ज्ञानावस्था की इकाइयाँ जड़ तथा चैतन्य की संयुक्त अवस्था के रूप में जीवित और प्रकट हैं।

जड़ ही विकासपूर्वक चैतन्य हुआ है। चैतन्य का तात्पर्य परमाणु का स्वयं में क्रियाशील, संवेदनशील व संज्ञानशील हो जाना ही है।

जीवावस्था की इकाई में आशा का परिवर्तन तथा परिमार्जन ज्ञानावस्था की इकाई में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प का परिवर्तन एवं परिमार्जन प्रसिद्ध है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई (चैतन्य परमाणु) अपने कार्यक्षेत्र सहित पुंजाकार में है।

ज्ञानावस्था की प्रत्येक चैतन्य इकाई, परमाणु समूह से मुक्त, आशा, विचार, इच्छा तथा संकल्प युक्त है। इसलिए यह बंधन और मोक्ष का कारण है।

संवेदनाओं में ज्ञानेन्द्रियों से आस्वादानापेक्षा बंधन की ओर एवं ब्रह्मानुभूति मोक्ष की अवस्था है।

प्रत्येक परमाणु ब्रह्म में ओत-प्रोत है, इसलिए संपूर्ण जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति ब्रह्म में संपृक्त, नियंत्रित, प्रेरित, क्रियारत एवं संरक्षित है। यही कारण है कि मानव अनवरत ब्रह्मानुभूति योग्य-अर्हता के लिए अभ्युदयशील है।

आत्मा में ब्रह्मानुभूति, बुद्धि में आत्मानुभूति, चित्त में बुद्धि सहज अनुभूति, वृत्ति में चित्तानुभूति, तथा मन में वृत्ति सहज अनुभूति की क्षमता होने तक जागृति क्रम है। यह अनुभव समुच्चय है जो समत्व या सहज समाधि है।

ब्रह्म प्राप्ति अप्राप्ति व अभाव के आरोप से मुक्त और नित्य वर्तमान है।

प्रत्येक मानव इकाई में प्राप्ति-अप्राप्ति के अपेक्षाकृत विविधता प्रकट है-जो समाधान नहीं है।

ब्रह्मानुभूति (सहअस्तित्वानुभूति) ही पूर्ण समाधान है।

जड़-चैतन्य का आधार ब्रह्म ही है। आधार का तात्पर्य निरन्तर ब्रह्म में नित्य अविभाज्य होने से है।

इन्द्रियों द्वारा संपन्न पंच क्रियाकलाप भी चैतन्य के ही हैं। चैतन्य के अभाव में इन्द्रिय-व्यापार नहीं है।

ज्ञानात्मा के समस्त क्रियाकलापों का उद्देश्य केवल क्लेशों से मुक्ति पाना ही है। समास्यायें ही क्लेश हैं।

जीवात्मा के क्रियाकलाप केवल विषय भोग तक ही सीमित हैं। जीवावस्था की चैतन्य इकाई जीवात्मा है।

संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भय ही समस्याओं के प्रधान कारण हैं ये सब भ्रम हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं है।

असंग्रह, स्नेह, विद्या, सरलता, सहजता, अभय ही क्लेश से मुक्ति और हर्ष के लक्षण हैं। ये ही समाधान एवं समत्व के भी लक्षण हैं। जिनके अस्तित्व की निरन्तरता पायी जाती है।

तीव्र तापवश मरीचिका का, भूमि की अपारदर्शकतावश

अंधकार का तथा देहात्मावादी कल्पनावश मृत्यु का भ्रम जैसा भासता है वैसा ही भ्रमवश क्लेश होता है। देहात्मावाद का तात्पर्य शरीर को जीवन मान लेने से है। यही भ्रम है।

निर्भ्रमता के योग्य क्षमता की अपूर्णता ही भ्रम है। भ्रम का निवारण मात्र अनुभव समुच्च से ही है।

अनुभव-समुच्चय मानवीयताधिकार पूर्वक
अतिमानवीयताधिकारों की सम्पन्नता से है।

अतिमानवीयताधिकार का स्रोत मानव इकाई की अपनी शक्ति की अंतनिर्योजन (स्व-निरीक्षण) प्रक्रिया है।

क्लेश ही दास्यता है। यह अजाग्रति का प्रतीक है। उससे मुक्ति ही स्वतंत्रता का लक्षण है।

दास्यता से मुक्ति हेतु ही आप्त पुरुषों के विधिवत् उपदेश हैं जो जीवन के कार्यक्रम एवं व्यवस्था के प्रेरणास्रोत है।

दास्यता किसी की भी ऐच्छिक प्राप्ति अथवा इष्ट नहीं है। उपदेश का तात्पर्य उपाय पूर्वक भ्रममुक्त होने का सूत्र व व्याख्या से है।

स्वकर्म-परिपाक संस्कार अध्ययन एवं वातावरण ही स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के कारण है। इन तीनों कारणों की व्यवस्था निर्भ्रम स्थिति के लिये नियोजित होने योग्य प्रक्रिया के विश्लेषण के संदर्भ में मानव व्यवहार दर्शन में की जा चुकी है।

भोगों की सीमा में सुख भासता है - जिसकी निरंतरता नहीं यह प्रसिद्ध है।

ज्ञानावस्था की प्रत्येक इकाई आनंदानुभूति तथा उसकी निरंतरता की ही इच्छुक है। बहुसंख्यक मानव विषयभोग की सीमा में

ही इसे पाना चाहते हैं। परिणामतः क्लेश है।

ज्ञानावस्था की इकाईयों में क्रियाकलाप से आस्वादन एवं अनुभूति ही परिलक्षित होती है।

आस्वादन में सुख, शान्ति, संतोष तथा आनंद मात्र भासता है, उसकी निरंतरता नहीं है।

अनुभूति केवल ब्रह्म में है। ब्रह्म ही सत्य है। नियम, न्याय धर्म एवं सत्य सहज ही अनुभव है। संपूर्ण व्यवहार एवं क्रिया का नियंत्रण सत्य में है, इसलिए।

जड़ प्रकृति की सत्यता का ज्ञान, चैतन्य का बोध एवं व्यापक सत्ता में अनुभव स्वयम् सिद्ध है।

जड़ प्रकृति की वस्तु-स्थिति, रासायनिक प्रक्रिया एवं भौतिक संरचना के ज्ञान से, ज्ञानावस्था की जाग्रत इकाइयाँ नियंत्रण पूर्वक उसका उपयोग, सदुपयोग एवं पोषण करती हैं।

मानव का बोधपूर्ण होने पर, स्वमूल्यांकन पूर्वक मानवीयतापूर्ण सामाजिकता सुलभ हो जाती है। फलस्वरूप देव एवं दिव्य मानवीयता के प्रति जिज्ञासा एवं लक्ष्य स्फुरित होता है। उसकी पूर्ति हेतु प्रयास भी प्रयत्नक्ष है।

चैतन्य इकाई अर्थात् चैतन्य परमाणु में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा अविभाज्य वर्तमान है जिसके अध्ययन के बिना सत्यता प्रमाणित होना संभव नहीं है।

मन में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, वृत्ति में अठारह प्रकार के तुलन, चित्त में आठ प्रकार के चित्रण, बुद्धि में दो प्रकार के बोध एवं आत्मा में मात्र अनुभूति अनुभव योग्य क्षमता क्रिया का विश्लेषण मानव

व्यवहार दर्शन में किया गया है।

ब्रह्मानुभूति ही आनंद की निरंतरता है।

जाग्रत मनुष्य में जड़ संपत्ति भौतिक समृद्धि परस्पर मानवीयता पूर्ण व्यवहार के साथ ही समाधान एवं उसकी निरंतरता है। जिसकी उत्कट अभिलाषा भी प्रसिद्ध है।

आस्वादन एवं अभिभूति का अवसर मात्र ज्ञानावस्था की इकाई को ही प्राप्त है।

प्रकृति की स्थिति संकेत-ग्रहण तथा व्यापकता में अनुमान-अनुभव की क्षमता ही ज्ञानावस्था को प्रधान अवसर एवं उपलब्धि के रूप में प्राप्त गरिमा है।

ज्ञानात्मा ही वांछित परिमार्जन से देव तथा दिव्यात्मा का पद पाती है न कि जीवात्मा।

दिव्यात्मा का पद ही मोक्ष पद है। यही जाग्रति का चरमोत्कर्ष है।

दया-कृपा-करुणा ही दिव्यात्मा का स्वभाव, ब्रह्मानुभूत प्रवृत्ति तथा दृष्टि केवल सत्य है।

शारीरिक व्यामोह की सीमा तक ज्ञानात्मा भी जीवात्मा के सदृश दुःख, शोकादि कार्पण्य दोष (क्लेश परिपाकात्मक प्रवृत्ति) से पीड़ित भ्रमित है जो केवल न्याय, धर्म, सत्यानुभूति योग्य क्षमता का अभाव ही है।

आत्मा स्वभाव से अनुभव रत, बुद्धि विशेषज्ञ, चित्त चित्रण वेत्ता, वृत्ति विचार वेत्ता एवं मन स्वभाव से रसज्ञ है। यह सब जाग्रति पूर्वक ही अनुभूति से सम्पन्न होते हैं।

मनुष्य के स्थूल रूप को इच्छानुसार संचालित करने वाला चैतन्य पुंज ही ज्ञानात्मा है एवं जीव शरीर को संचालित करने वाला पुंज ही जीवात्मा है।

अनुभूति पर्यन्त जाग्रति के प्रयास का अभाव नहीं है। साथ ही जड़ प्रकृति परिणाम एवं चैतन्य प्रकृति परिमार्जन प्रक्रिया से मुक्त नहीं है।

वस्तु में गुण, रचना में परिणाम व परिवर्तन तथा चैतन्य में आशा, विचार, इच्छा में परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

जड़ पक्ष में परिणाम और परिवर्तन, चैतन्य पक्ष में गुणात्मक परिवर्तन और परिमार्जन क्रिया को पाया जाता है।

वस्तु पदार्थ, गुण सापेक्ष शक्ति संरचना आकार प्रकार के परिणाम-परिवर्तन का कारण विकासक्रम ही है।

वस्तु के गुण एवं संरचना में परिणाम व परिवर्तन का कारण ही है उनका अस्थायित्व और अपूर्णता।

पदार्थ तत्त्वतः परमाणु के स्वभाव गति के रूप में प्राप्त है।

परमाणुओं की अनेक प्रजातियाँ प्राप्त हैं। जिन्हें भौतिक शास्त्र ने सिद्ध कर दिया है।

चैतन्य परमाणुओं में गठनात्मक जातियाँ नहीं पाई जाती हैं। जिसके कारण उनमें गठन सीमा में विविधता नहीं प्रकट होती है।

ज्ञानावस्था की इकाइयाँ निर्भ्रान्त, भ्रान्त तथा भ्रान्ताभ्रान्त भेद से गण्य हैं।

भ्रान्त इकाइयाँ चार विषयों के भोग के लिए, भ्रान्ताभ्रान्त इकाइयाँ

तीन ऐषणाओं के योग के लिए तथा निर्ध्रात इकाइयाँ ब्रह्मानुभूति में तुप्त हैं।

चैतन्य इकाइयों चैतन्य परमाणुओं में गठन परिवर्तन नहीं है। जड़ परमाणुओं में ही गठन-गुण व रचना का परिवर्तन होना पाया जाता है।

परमाणु में जितने अंशों के समाने की संभावना है उतने अंशों के समाने पर गठनोपरांत चैतन्य होना और उन समस्त अंशों का अल्प, अर्ध व पूर्ण अभिव्यक्ति सहज क्रियाशीलता पूर्वक ही परिमार्जित होना पाया जाता है। मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि में परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

चैतन्यावस्था की इकाइयों में गठन पूर्णता संपन्न हो चुकी है जिसके कारण मानव 'जीवन' में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, अठारह प्रकार के तुलन, आठ प्रकार के चित्रण, दो प्रकार की बोध क्रियाएं और आत्मा में मात्र अनुभूति सिद्ध है।

अंतर्यामी की संज्ञा से पारगामीयता के आधार पर व्यापकता सहज महिमा इंगित किया गया है।

अंतर्यामी में अनुभूति से अभिमान समाप्त होता है। अभिमान भ्रम का ही अंश है।

अंतर्यामी में बोध होने पर संसार को एक परिवार के रूप में आत्मीयता (अनन्यता) पूर्वक स्वीकारता है। यही सर्वशुभ का सूत्र है।

आत्मीयता ही परस्पर अपराधों तथा अपव्ययों का निरोधक और नियामक है। साथ ही न्याय, धर्म, सत्य के अनुसरण के लिए प्रेरणा प्रदायिनी है।

परस्परता में अपराध एवं अपव्यय का अभाव ही सह-अस्तित्व

सामरस्यता है।

जाग्रत मानव व्यवहार काल में सह-अस्तित्व की कामना करता है व प्रमाणित रहता है।

आत्मबोध के अभाव में अंतर्यामित्व में अनुभव ज्ञान होना संभव नहीं है। सत्ता में संपृक्तता का बोध ही अंतर्यामी सहज बोध है।

आत्मा अनवरत मध्यस्थ क्रिया है। वह अधिक व कम से मुक्त है, आवेश से रहित है, शोक-मोह-भ्रम से मुक्त है। इसलिए आत्मा से प्रभावित बुद्धि, बुद्धि से प्रभावित चित्त, चित्त से प्रभावित वृत्ति, वृत्ति से प्रभावित मन ही उत्पादन, व्यवस्था और व्यवहार का नियंत्रण करता है। अन्यथा में व्यवहार और उत्पादन, व्यवस्था द्वारा ही नियंत्रित पाया जाता है। जो दासता है, यही दूसरे को दास बनाने का प्रयास करता है। जिसमें जो होता है उसी का वह बंटन करता है। दासत्व तीन रूपों परिलक्षित होता है-

1- व्यवहार दासत्व

2- कर्म दासत्व

3- विचार दासत्व

दासत्व में क्रम से न्याय, समाधान और अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता प्रमाणित नहीं होती है।

आत्मा मध्यस्थ क्रिया की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित है। मध्यस्थता ही समाधान, समाधान ही न्याय, न्याय ही मध्यस्थता या समत्व है। अनुभूति योग्य अवसर मनुष्य को प्राप्त है, इसलिए-

आत्मा इकाई के गठन के मध्य में स्थित पायी जाती है अतः वह मध्यस्थ क्रिया है। अन्य चारों स्तरीय अंश अंतरांतर परिवेश में आत्मा

के सभी ओर भ्रमणशील है, इसलिए सम एवं विषम क्रियाएं हैं।

इकाई का नियंत्रण मध्यस्थता में ही है।

जड़-क्रिया का नियंत्रण नियम में, सामाजिकता का नियंत्रण न्याय में, आशा विचार एवं इच्छा का नियंत्रण समाधान में, अनुभव का नियंत्रण ब्रह्मानुभूति में ही है।

अनंत क्रिया समूह ही प्रकृति एवं विराट् है। प्रत्येक क्रिया विराट् का एक अंश है। प्रत्येक परमाणु भी एक सूक्ष्म विराट् है।

लक्षण पूर्वक ही नियम, न्याय, समाधान व अनुभव दर्शन है।

नियम में अपरिणाम-अपरिवर्तन, अपरिपाक, न्याय में असंदिग्धता, धर्म में निर्विषमता एवं सह-अस्तित्व समाधान में स्वर्गीयता व समृद्धि और अनुभव में आनंद की निरंतरता है, इसके लिए ही मानव तृप्ति है।

नियम, न्याय, धर्म, सत्य शब्द भी ब्रह्मानुभूति सहज अर्थ को इंगित करते हैं। इन सबमें व्यापक ही इंगित है। व्यापक पूर्ण ही है। जाग्रत मानव में स्वतंत्रता ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व ही सहज समाधि, सहज समाधि ही आनंद, आनंद ही जीवन जाग्रति, जाग्रति ही स्वतंत्रता है।

स्वतंत्रता की कामना प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है।

जड़ प्रकृति के साथ नियम पूर्वक उत्पादन, समाज में न्याय पूर्वक व्यवहार, स्वयं में समाधान पूर्ण विचार एवं सत्ता में अनुभवपूर्ण क्षमता से संपन्न होना ही मानव इकाई का परम जाग्रति है। यही स्वतंत्रता का आद्यान्त लक्षण है।

स्वतंत्र मानव इकाई जाग्रति सहज प्रमाण है तथा अन्य उसका

अनुसरण करने में या पूर्ण जाग्रति के निकट है।

जाग्रति पूर्ण मानव इकाई अन्य के अभ्युदय के लिए सहायक है।

स्वतंत्र मानव इकाइयों की संख्या वृद्धि हेतु मानवीयता सहज व्यवहार उत्पादन तथा व्यवस्था का अध्ययन व आचरण की एकसूत्रता आवश्यक है।

मानव इकाई पूर्ण जाग्रति पूर्वक ही अनुभव वेत्ता सिद्ध हुई है। जड़ अवस्था से विकास पूर्वक चैतन्य अवस्था प्राप्त होती है। ये चैतन्य इकाइयाँ ही जीवात्मा तथा ज्ञानात्मा के प्रभेद से गण्य है।

मनुष्याकार शरीर को ज्ञानात्मा अपनी आशा, विचार एवं इच्छानुसार संचालित करता है। जीवात्मा मनुष्येतर पशु-पक्षी आदि जीव शरीरों को आशानुरूप संचालित करता है। ज्ञानात्मा ही जाग्रतिपूर्वक मनुष्यात्मा, देवात्मा या दिव्यात्मा में गण्य है। क्रम से इन्हीं को मानव, देव मानव और दिव्य मानव की संज्ञा प्रदान की गई है।

दिव्य मानव को ब्रह्मानुभूति, देव मानव को ब्रह्म प्रतीति और मानवीयतापूर्ण मानव को ब्रह्म का आभास और अमानव में भी ब्रह्म भासता है। इसलिए जिनको चार विषयों में भोग, अतिभोग करते हुए सुख भासता है जिसकी निरंतरता नहीं हो पाती है यही अमानव में जागृति सहित अपेक्षा है।

आनंद की निरंतरता की आशा, आकाँक्षा और जिज्ञासा मानव में पायी जाती है। जाग्रतिपूर्वक ब्रह्मानुभूति के लिए मनुष्य प्रयासरत है, इसलिए-

क्रिया तथा ब्रह्म में लक्षण भेद है।

क्रिया अनंत संख्या में अनेक अवस्थाओं सहित स्थूल, सूक्ष्म और कारण भेद से प्रत्यक्ष है। ब्रह्म अखण्ड, पूर्ण, व्यापक है।

जड़ (स्थूल) क्रिया का परिणाम, परिवर्तन, परिपाक प्रत्यक्ष है।

चैतन्य क्रिया में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प सक्रियता और उसका परिमार्जन, विकल्प भी प्रसिद्ध है। सत्यानुभव-योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से परिपूर्ण होने तक स्वीकृति रूपी परिपाक, परिमार्जन और जाग्रति सहज विकल्प की श्रृंखला बनी हुई है, जो पूर्णता एवं स्वतंत्रता हेतु मार्ग है।

सत्यानुभव आत्मा में, बोध बुद्धि में, प्रतीति चित्त में, आभास वृत्ति में एवं भास मन में होता है।

अनुभव-क्षमता की आंशिकता में बोध, बोध की आंशिकता में प्रतीति, प्रतीति की आंशिकता में आभास एवं आभास की आंशिकता में भास-क्षमता प्रसिद्ध है, जो साक्ष्य में प्रत्यक्ष होने वाली संज्ञानीय क्रियायें हैं। यही ज्ञानावस्था सहज महिमा है।

पाँच संवेदन क्रियाओं द्वारा आस्वादन एवं स्वागत क्रिया की अभिव्यक्ति होती है। स्वागत भाव-पक्ष का बोधपूर्वक अनुभव भी होता है।

स्वागत एवं आस्वादन क्रिया मानव में प्रसिद्ध है।

स्वागत भाव में अनुभव के लिए, आस्वादन भाव में भोगों के लिए अनुमानांकुर है।

भोग पूर्वक आस्वादन केवल जड़ पक्ष में, से, के लिए है। अनुभवाकांक्षी स्वागत भाव सत्य में ही है।

लोक सत्य, वस्तु स्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य के रूप में तथा व्यापक स्थितिपूर्ण प्रसिद्ध है। यह प्रमाण सिद्ध है। दर्शन क्षमता की अपूर्णता की स्थिति में अनुमान, अध्ययन और अनुभव के लिए प्रयास का उदय होता है।

लक्षण और लक्ष्य के योगफल में अनुमान का उदय होता है। विज्ञान एवं विवेक-ज्ञान ही प्रमाण है जो अनुभव समाधान व्यवहार व प्रयोग ही है।

वस्तु स्थिति सामयिक सत्य है।

काल-क्रिया-परिणाम से मुक्त नित्य, सत्य ब्रह्म ही है।

संवेदनाओं के आस्वादन की अपेक्षा में स्वांगत भाव का अधिक हो जाना ही जाग्रति की ओर गति है। इसके विपरीत भोगों में प्रवृत्ति है जो अजाग्रति व ह्रास का लक्षण है।

आत्मा कारण (मध्यस्थ) क्रिया है। अस्तित्व एवं आनंद ही उसका आद्यांत लक्षण है।

ज्ञानावस्था में मानवीयता पूर्ण मनुष्य ही उत्पादनशील व्यवहारशील, विचारशील एवं अनुभवशील इकाई है।

मनुष्य में कार्य व्यवहार-काल, विचार-काल एवं अनुभव काल प्रसिद्ध है। उत्पादन व्यवहार एवं विचार की उपादेयता अनुभव की आशा एवं आकांक्षा में ही है।

ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं है।

मानव अपने से कम विकसित के साथ उत्पादन, समान के साथ व्यवहार, अधिक श्रेष्ठ का सान्निध्य और व्यापकता में अनुभव करता है, करना चाहता है या करने के लिए बाध्य है।

अध्याय - तीन

- श्रम का क्षोभ ही विश्राम की तृषा है । ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण विज्ञान है ।
- प्रत्येक कर्म के स्फूरण के मूल में संस्कार है प्रत्येक कर्म संस्कारदायी है ।



क्रिया समूह ही विराट् है।

इकाइयाँ विकास के अंतरांतर वैविध्यता से रहित नहीं है।

असंख्य विविधता का समूह ही विराट् है।

विराट् ही प्रकृति है।

ब्रह्म व्यापक और स्थिर है अतः उसमें कोई तरंग, कम्पन, स्पंदन और गति नहीं है।

“यह” पारगामी है।

“यह” आकार-प्रकारात्मक सीमा से बाधित नहीं है। अतः इसमें कोई संकल्प-विकल्प नहीं है।

सत्ता में समाहित अनंत क्रियाएं गतिशील, स्पंदनशील, कंपनशील और तरंगित पाई जाती हैं। जिसके फलस्वरूप परिणाम-परिपाक-पूर्वक प्रकृति चार अवस्थाओं में प्रकट है।

प्रत्येक क्रिया सीमित, सत्ता में सम्पृक्त है अतः ब्रह्म परिणामादि क्रिया का कारण नहीं है।

क्रिया- समूह का आधार ब्रह्म ही है। यह निर्णय ज्ञानावस्था की इकाई में है।

ब्रह्म में संकल्प-विकल्पादि क्रिया नहीं है।

ब्रह्म में क्रियाशीलता के प्रति वर्तमान में कोई पुष्टि या प्रमाण नहीं है। इसकी व्यापकता में पुष्टि प्रमाण उपलब्ध है।

अनुभव में वर्तमान क्रिया प्रतिष्ठा है। भूत और भविष्य केवल अनुमान में हैं। अनुमान साधार व निराधार के भेद से गण्य है। जो स्पष्टता तथा अस्पष्टता को प्रकट करता है।

नियम-प्रक्रिया-लक्षण सहित साधार अनुमान अन्यथा निराधार-अनुमान है।

प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य की उपलब्धि प्रसिद्ध है।

प्रत्येक इकाई विराट् का एक अंश है। वह विराट् का संकेत ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त है, इसलिए

प्रकृति निर्माण के आरम्भिक क्रम तथा ब्रह्म के अस्तित्व के आरंभिक काल के संबंध में कोई प्रमाण नहीं है। वर्तमान में सत्ता और सत्ता में समाहित प्रकृति ही प्रत्यक्ष है। प्रकृति और सत्ता के आदि और अन्त की चर्चा विगत और आगत में है। जिसके अंतराल का कोई प्रमाण नहीं है। गणना ऋण धन-अनंत की स्थिति में प्रस्तुत हुई है। इसलिए

निराधार अनुमान, प्रत्यक्ष या साधार (योजनाबद्ध अनुमान) नहीं है। यह प्रसिद्ध है।

आकार-आयतन-धनोपाधियुक्त अनंत लोकों का आधार भी ब्रह्म में ही है।

सूत्र, छंद, वाक्य, शब्द के द्वारा क्रिया मात्र का वर्णन है। साथ ही ज्ञानानुभूति के लिए उपदेश पूर्वक इंगित भी है।

ब्रह्म सहज वर्णन पारगामी व्यापक और पारदर्शीयता के रूप में है। “यह” केवल भास, आभास, बोध तथा अनुभवगम्य है। इसका बोध मानव की क्षमता, योग्यता, पात्रता पर आधारित है।

प्रत्येक इकाई का आधार ब्रह्म में ही है। सबको मूल प्रेरणा “यह” में ही प्राप्त है। प्रकृति सत्ता में संपृक्त है, इसलिए-

ब्रह्म में प्रेरणा प्रदान करने के लिए संकल्प-विकल्पादि की पुष्टि नहीं है।

नियंत्रण ही प्रेरणा है। व्यापक में ही प्रकृति नियंत्रित है।

ब्रह्म से रिक्त-मुक्त-क्रिया एवं स्थान नहीं है।

ब्रह्म व्यापक और क्रिया सीमित है। अतः क्रिया ब्रह्म में संपृक्त (आश्लिष्ट-संश्लिष्ट) है। इसलिए प्रकृति ब्रह्म में नियंत्रित है।

सम्पृक्तता में ही नियंत्रण, नियंत्रण ही प्रेरणा व प्रेरणा ही ज्ञान है।

ब्रह्म में ज्ञानावस्था में जागृति में, से, के लिए गति है। ब्रह्म ही व्यापक, व्यापक में हर इकाई नियंत्रित, नियंत्रण ही प्रेरणा, प्रेरणा ही नियम-न्याय-धर्म-सत्य, नियम-न्याय-धर्म-सत्य ही प्रेम, प्रेम ही अनुभूति, अनुभूति ही जाग्रत जीवन, जाग्रत जीवन ही आनंद, आनंद ही ब्रह्मानुभूति और ब्रह्म में ही ज्ञान है।

लक्ष्य की ओर त्वरण-क्रिया ही प्रेरणा व प्रमाण है।

प्रकृति मूलतः ब्रह्म में नियंत्रित व प्रेरित है। वह सदा चार अवस्थाओं में अभ्युदयशील है, इसलिए -

मानव का लक्ष्य मात्र अनुभूति ही है। विराट् अपने में स्थित जड़-प्रकृति का उपयोग जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में अहर्निश करता आया है। मानव को आनंद सहज निरंतरता पद-मुक्ति के अतिरिक्त नहीं है। यही दिव्य मानव पद है।

जाग्रति पूर्वक प्रत्येक क्रिया की प्रेरणा में अनुभव से अधिक अनुमान है।

मानव द्वारा जड़ प्रकृति के आस्वादन से आनंद की निरंतरता नहीं है।

श्रम का क्षोभ ही विश्राम की तृषा है। ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण

विश्राम है। पूर्ण विश्राम ही सर्वतोमुखी समाधान सहज प्रमाण है।

क्रिया मात्र की वस्तुस्थिति का दर्शन-ज्ञान होना एवं सत्य में अनुभव होना प्रसिद्ध है।

ब्रह्म नित्य-सत्य-अक्षय-अखण्ड-ज्ञान एवं शाश्वत है। यह स्थूल, सूक्ष्म, कारण क्रिया और परिणाम से रहित, देश, कालातीत, आनंद स्वरूप एवं पूर्ण है।

शब्द एवं उसकी गति भी ब्रह्म में समाहित है। ब्रह्म शब्द से शून्य भी इंगित है। प्रकृति की पूर्ण विवेचना के उपरांत भी ब्रह्म के सदृश कोई और नहीं है तथा उसके संदर्भ में अन्य कोई अनुभव भी नहीं है। प्रकृति का उससे पृथक् अस्तित्व नहीं है।

क्रिया और इकाइयों का सान्निध्य एवं सहवास प्रसिद्ध है। वह विरोध अथवा निर्विरोध पूर्वक स्वागत एवं आस्वादन भाव सहित आशा, आकांक्षा तथा इच्छा के रूप में मानव में प्रत्यक्ष है।

ब्रह्म ही परमात्मा है। यही पूर्ण सत्ता है।

आत्मा का नित्य अभीष्ट होने के कारण इसकी संज्ञा परमात्मा है।

इकाईयाँ परिमित, परमात्मा अपरिमित है।

प्रत्येक ज्ञानात्मा अपने अभिन्न अंगों सहित एक मानव शरीर को संचालित करते हुए मानवीयता एवं अतिमानवीयता से परिपूर्ण होने के लिए प्रयासरत है। फलतः परमात्मानुभव करता है।

ज्ञानात्मा मानवीयता तथा उससे अधिक जाग्रति के सीमावर्ती स्वभाव एवं कर्मों में व्यवहाररत और आकांक्षु है। इसके विपरीत भ्रमवश अमानवीयतात्मक स्वभाव-दृष्टि पूर्वक विषयोपभोग में भी रत पाया

जाता है।

अमानवीयता के लक्षण मनुष्येतर जीव में आंशिक रूप में विद्यमान है।

मनुष्य अमानवीयता पूर्वक भोग, दृष्टि व स्वभाव से हास की ओर अग्रसर होता है।

प्रत्येक ज्ञानात्मा भ्रम पर्यन्त शरीर त्याग के समय सुख या दुख, सुरूप या कुरूप के प्रभाव से पूर्णतः प्रभावित हो जाता है। जो स्वप्रभावीकरण है। यही जन्म परिपाक प्रक्रिया है।

स्वप्रभावीकरण प्रक्रिया का बोध मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की शक्तियों की अंतर्नियोजन प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य दूसरे के देह त्याग की क्रिया को देखता है। उस समय उसमें पाये जाने वाले लक्षण भी स्वप्रभावीकरण प्रक्रिया की पुष्टि है।

संस्कारों के प्रभाव का प्रत्यक्ष रूप मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि की सक्रियाशीलता है जो “ता-त्रय” की सीमा में व्यक्त होती है।

प्रत्येक कर्म के स्फुरण के मूल में संस्कार है। प्रत्येक कर्म संस्कारदायी है। क्रिया की प्रतिक्रिया व परिपाक प्रसिद्ध है।

आस्वादन एवं चयन क्रिया का प्रभाव मन पर, विश्लेषण एवं तुलन क्रिया का प्रभाव वृत्ति पर, चित्रण एवं चिंतन क्रिया का प्रभाव चित्त पर, संकल्प एवं बोध का प्रभाव बुद्धि पर होता है।

सत्य बोध योग्य संस्कारों से समृद्ध होने तक बुद्धि ही अहंकार के रूप में स्पष्ट है।

अहंकार ही भ्रम एवं अज्ञान का कारण है।

आत्मा का संकेत ग्रहण करने में बुद्धि की अक्षमता ही अहंकार

है।

गुणात्मक संस्कारों द्वारा ही अहंकार से मुक्ति है। साथ ही इससे अभिमान रहित संकल्पोदय होता है।

भ्रम से मुक्त होने के लिए सत्यासत्य के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों के दृढ़ संकल्प में परिणित होने की दृष्टि से शोध की अनिवार्यता है।

सिद्धांत व प्रक्रिया पूर्वक सत्यता का उद्घाटन ही शोध है।

सुप्रवृत्तियों एवं सुसंस्कारों के लिए परिवार एवं समाज सहज परम्परा के अध्ययन से प्राप्त वस्तुबोध तथा परिवेश गत प्रेरणाएं सहायक तथ्य हैं।

कृतघ्नता, स्तेय, परिग्रह, असत्य भाषण, परनारी या पर-पुरुष-व्यसन, अभिमान, द्रोह, विश्वासघात, निन्दा, दायित्व हीनता व कर्तव्यहीनता, उत्पादन में अप्रवृत्ति, आलस्य व प्रमाद, उपभोग की अनियंत्रित एवं तीव्र प्रवृत्ति, रहस्यता, दिखावा एवं हिंसा कुसंस्कारों के लक्षण हैं।

कृतज्ञता, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्यभाषण, स्वनारी-स्वपुरुष गमन, सरलता, दया, स्नेह पूर्वक विश्वासपालन, यथार्थ वर्णन, कर्तव्यों व दायित्वों का वहन, अधिक उत्पादन कम उपभोग, उत्साह एवं चेष्टा, रहस्यहीनता, सहजता एवं निर्बैरता सुसंस्कारों के लक्षण हैं। लक्षणों के आधार पर ही स्वभाव, तदनुसार ही मूल्यांकन क्रिया है। लक्षण विहीन मनुष्य नहीं है।

मानवता स्वतंत्र या स्वेच्छिक जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है। वह केवल यांत्रिक नहीं है। इसलिए प्रत्येक मानव इकाई संवेदनशील संज्ञानशील है एवं पूर्ण होने के लिए प्रयासरत है।

समाधान एवं अनुभव योग्य क्षमता पर्यन्त जाग्रति भावी है। संवेदनशीलता संज्ञानीयता पूर्वक ही नियन्त्रित होती है। यह क्रम प्रत्यावर्तन पर्यन्त श्रृंखलाबद्ध पद्धति से होता रहेगा। प्रत्यावर्तन क्रिया से ही प्रतिभा की अभिव्यक्ति मानव में मानवीयता एवं अतिमानवीयता के रूप में प्रत्यक्ष है। इन्हीं (प्रत्यावर्तन) क्रिया संपन्नता द्वारा वांछित का, लक्ष्य का तथा कार्यक्रम व पद्धति का प्रसारण होना भी भावी है। इसी से अन्य (अप्रत्यावर्तित) ज्ञानात्माओं की अपने में प्रत्यावर्तन योग्य व्यंजना सम्पन्न होना प्रत्यक्ष है।

प्रत्यावर्तन पूर्वक प्राप्त व्यंजनाएँ जाग्रति के लिए गुणात्मक गति है।

गुणात्मक व्यंजना से सुबोध, सुबोध से सुसंस्कार, सुसंस्कार से गुणात्मक संवेदना (संज्ञानीयता पूर्वक संवेदना नियन्त्रित) रहना, गुणात्मक संवेदना से सत्य संकल्प तथा सत्य संकल्प से गुणात्मक व्यंजनाओं की निरन्तरता है।

स्थिति एवं क्रिया संकेत-ग्रहण क्षमता ही व्यंजनीयता है।

संकेत-ग्रहण -प्रक्रियाबद्ध ज्ञान, प्राप्य को पाने, उसे सुरक्षित रखने के कार्यक्रम में अभिव्यक्त है। प्राप्त के अनुभव के क्रम में भास-आभास एवं प्रतीति ही ज्ञापक (सत्यापित होना) है।

मानव दूसरों के लिए भी संकेत प्रसारित करता है।

संकेत-ग्रहण-क्रिया ही अनुमानारोपण तथा अनुमानांकुर भी है। जो संकल्प, इच्छा, विचार व आशा है।

पाँचों इन्द्रियों द्वारा रसों की व्यंजना मन पर, इन्द्रिय समूह तथा मन के द्वारा तात्त्विक व्यंजना वृत्ति पर, इन्द्रिय मन तथा वृत्ति के द्वारा भावों (मौलिकताओं) की व्यंजना चित्त पर तथा इन्द्रिय मन, वृत्ति और

चित्त के द्वारा स्थितिबत्ता एवं सत्यवत्ता की व्यंजना बुद्धि पर उनके जाग्रति और अभ्यास के स्तर के अनुरूप पायी जाती है।

वातावरणस्थ क्रिया-संकेत-ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता ही व्यंजना है।

प्रत्येक संकेत के पूर्व-अधिष्ठित आशा, विचार, इच्छा और संकल्प को वे संकेत पुनराकार प्रदान करते हैं। जो वर्तमान में प्रत्यक्ष है। फलतः मनुष्य में अनेक वैविध्यताएं कुशलता, निपुणता, कला, विचार और आशा के रूप में प्रकट होती है साथ ही पांडित्य में, से, के लिए ही एकता है।

शरीर के द्वारा व्यवहार, हृदय के द्वारा शरीर, प्राण के द्वारा हृदय और मन के द्वारा प्राण का संचालन प्रसिद्ध है।

मन का संकेत संवेग के रूप में है। वह प्राण के द्वारा मेधस पर प्रसारित होता है। मेधस से तरंग में अनुवर्तित होकर शरीर को क्रिया-व्यापार में रत होने के लिए बाध्य कर देता है। बाह्य-प्रकृति के संकेत इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। यह परानुक्रम-संकेत-ग्रहण प्रक्रिया है।

आशा और विचारों के स्पंदन के अनुरूप प्राणोद्दीपन और प्राणोद्दीपन के अनुरूप आशा और विचारों का स्पंदन प्रसिद्ध है। यही प्रक्रिया काम, क्रोध, भय, भ्रान्ति, मोह, शोकादि क्लेश परिपाकी क्रियाओं में स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

स्पंदन-प्रतिस्पंदन क्रिया प्रक्रिया सहित ही संतुलन-असंतुलन, समाधान-समस्या, स्नेह-द्वेष, शान्ति-अशान्ति, संतोष-असंतोष, गौरव-तिरस्कार, आदर-अनादर, विश्वास-अविश्वास, श्रद्धा-अश्रद्धा, धैर्य-अधैर्य एवं कृतज्ञता-कृतघ्नतापूर्ण कार्य व व्यवहार को मनुष्य सभी

आयामों, कोणों तथा स्थितियों में निर्भ्रान्ति अथवा भ्रान्तिपूर्वक संपन्न करता है।

प्रत्यावर्तन ही पूर्वानुक्रम है। इसी पद्धति से आत्मा का प्रभाव बुद्धि पर, बुद्धि का प्रभाव चित्त पर, चित्त का प्रभाव वृत्ति पर, वृत्ति का प्रभाव मन पर पाया जाता है। यही आत्म-नियंत्रित अभिव्यक्ति है। यही अनुभवमूलक जीवन एवं जीवन की पूर्णता है।

आत्मानुशासित जीवन ही अनुभव पूर्ण है।

अनुभवमय अस्तित्व में ही परमानंद, आनंद, संतोष, शांति और सुख पूर्ण आप्लावन की निरंतरता है।

ब्रह्मानुभूति में परमानंद, आत्मानुभूति में आनंद, बुद्धि की अनुभूति में संतोष, चित्त की अनुभूति में शांति एवं वृत्ति की अनुभूति में सुख है। यही अनुभव समुच्चय है।

अनुभव समुच्चय ही अभ्युदय की परम उपलब्धि एवं लक्ष्य है।

अभ्युदयशील सामाजिकता ही अनुभव-समुच्चय ग्रहण करने योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता प्रदान करती है। यही परम्परा का आधार भी है।

मानवीयता का संरक्षण, संवर्धन, आचरण एवं संयम ही सामाजिकता है।

धीरता, वीरता, उदारतापूर्ण स्वभाव, पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा पूर्ण विषय प्रवृत्तियाँ तथा न्याय, धर्म एवं सत्यता पूर्ण दृष्टि ही मानवीयता की महिमा है। जिसके संरक्षण हेतु संस्कृति, सभ्यता एवं विधि व्यवस्था का प्रणयन शिक्षापूर्वक एवं जाग्रति के लिए सर्वसुलभ

होता है। अनुभवपूर्ण मनुष्य में मानवीयतापूर्ण व्यवहार स्वभावतः पाया जाता है।

मानवीयतापूर्ण व्यवहार ही सामाजिकता है।

सामाजिकतापूर्ण जीवन ही अतिमानवीयता के प्रति जिज्ञासा है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - चार

- संस्कारपूर्वक ही मूल प्रवृत्तियों का उदय होता है परिमार्जन पूर्वक ही पुनराभिव्यक्ति होती है।
- अनुभूति योग्य अर्हता को उत्पन्न कर देना ही संस्कार है।



आधारहीन कल्पना ही स्वप्न है।

आगन्तुक गुण ही कल्पना है। आगन्तुक गुण का तात्पर्य मनुष्येत्तर प्रकृति के अनुसार जीने की कल्पना करना है।

स्वभाव गुण (अर्जित गुण) और आगन्तुक गुण ये गुण के दो भेद प्रसिद्ध हैं।

शरीर शक्ति का नियोजन, उत्पादन, उपयोग, वितरण व सदुपयोग में प्रसिद्ध है।

क्रियाकलाप में गुणों का आदान-प्रदान, चैतन्य जीवन में स्वभाव मूल्यों का आदान-प्रदान दृष्टव्य है।

चैतन्य की स्वभाव गति शक्तियों का इन्द्रिय-व्यूह द्वारा प्रकटीकरण तथा उसकी गुणगत प्रक्रिया का संकेत-ग्रहण पूर्वक समर्थन अथवा असमर्थन भी उसी से सम्पन्न होता है।

मनुष्य में आगन्तुक अथवा अर्जित स्वभाव (मौलिकता) ही प्रत्यक्ष है।

जाग्रत मानव में मूल प्रवृत्तियों के मूल में स्वयं में मौलिकता स्वीकृत रहता ही है।

जाग्रत चैतन्य इकाई स्वयं में विश्वास पूर्वक मूल्यांकन करती है।

जागृत स्वभाव समाधानपूर्ण मूल प्रवृत्तियों के रूप में प्रत्यक्ष है। भ्रमित जीवन में क्लेश तथा जाग्रत जीवन में हर्ष स्पष्ट है।

संस्कारपूर्वक ही मूल प्रवृत्तियों का उदय होता है। परिमार्जन पूर्वक ही पुनराभिव्यक्ति होती है।

मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि के क्रमानुवर्ती संवेगों के मूल में पायी जाने वाली इच्छाओं में अपेक्षाकृत तीव्र इच्छाएँ अर्जित स्वभाव है। जो प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्म एवं कारण कोटि की इच्छाएँ प्रच्छन्न रूप में अवस्थित रहती हैं। यह संस्कारों में पाया जाने वाला सूक्ष्म भाग है। संपूर्ण इच्छाएँ संस्कारगत एवं व्यवहारगत रूप में स्थित है जो प्रमाणित है।

तीव्र इच्छा को मनाकार व मनः स्वस्थता का रूप प्रदान करने के लिए मानव इकाई तन, मन व धन का नियोजन करती है।

संवेग तीव्र, मन्द और सूक्ष्म भेद में दृष्टव्य है जो क्रम से तीव्र इच्छा, कारण और सूक्ष्म इच्छाओं पर आधारित है।

इच्छा गति बराबर संवेग है।

दर्शन = आकाँक्षा = इच्छा = संवेग = प्रज्ञागति = ज्ञान विज्ञान व विवेकपूर्ण प्रमाण = दर्शन है।

प्रवेश पूर्वक पारदर्शकता पूर्वक स्थिति संकेत-ग्रहण एवं प्रसारण क्रिया ही प्रज्ञा है। अनुभव योग्य क्षमता ही सत्ता में समाहित इकाई की पारदर्शकता है। यही सर्वोच्च जाग्रति है। सत्ता में प्रकृति संपृक्त रहना प्रमाणित है, साथ ही सत्ता में इकाई का अनुभव पूर्ण होना भी प्रमाणित है।

पूर्णता के अर्थ में संकेतानुसार वेग ही संवेग है। संचेतना में संवेदना नियंत्रित रहती है।

ज्ञानावस्था की इकाई में किसी भी प्रकार के संस्कार से संस्कारित होने के पूर्व किसी न किसी पूर्व संस्कार की विद्यमानता स्वभाव के रूप में पायी जाती है। पूर्व संस्कार अध्ययन एवं वातावरण अग्रिम संस्कारों की स्थापना के लिए अनिवार्य कारण है। संस्कारगत स्वभाव

दो श्रेणियों में गण्य है।

1- मानवीयतापूर्ण,

2- अतिमानवीयतापूर्ण,

अमानवीयतावादी प्रवृत्ति है, जो संस्कार नहीं है।

ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने पर्यन्त गुणात्मक संस्कारपूत होना आवश्यक है। यही अभ्यास पूर्वक अभ्युदय का प्रमाण है।

समाज ही व्यक्ति के संस्कारों के परिमार्जन, परिवर्तन और प्रस्थापन का कारण है। अभ्युदयकारी अध्ययन, व्यवस्था एवं तदनुसार आचरण ही समाज है।

समाज ही व्यवस्था एवं शिक्षा पूर्वक जागृत वातावरण को उत्पन्न करता है।

प्राकृतिक वातावरण की तुलना में जागृत वातावरण संस्कार आरोपण क्रिया में विशिष्ट सशक्त कारण है।

मनुष्येत्तर प्रकृति का उत्पादन पूर्वक उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन पूर्वक पोषण जाग्रत मानव करता है। वह उसको अपने उत्पादन के निमित्त कच्चे पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करता है।

भ्रमित चैतन्य पक्ष द्वारा जड़ पक्ष में बलात् ग्रहण और इतर चैतन्य इकाइयों पर विचार पूर्वक संप्रेषण या संक्रमण होता है। साथ ही, ज्ञान, विवेक और विज्ञान पूर्वक सामाजिक एवं सहअस्तित्व पूर्ण होता है।

सामाजिकता की स्थापना आक्रमण अथवा बल प्रयोग से

संभव नहीं है अपितु जागृति के लिए अपेक्षित उच्च संस्कारों द्वारा ही यह संभव एवं सुलभ है।

स्वभाव ही सामाजिकता का मूल्यांकन करता है। उसी (स्वभाव) के आधार पर, उसी के लिए, उसी को सुसंस्कारों से सम्पन्न करने के लिए ही अध्ययन है।

अध्ययन की पुष्टि, प्रकाशन, प्रचार, प्रदर्शन से है। इसकी सफलता या असफलता सामाजिकता के संरक्षण के लिए की गयी व्यवस्था पर आधारित है।

मानवीयता तथा अतिमानवीयता से संपन्न प्रत्येक इकाई के स्वभाव को अविच्छिन्न बनाने योग्य वातावरण का निर्माण करना, शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्योपांत कार्यक्रम है। यही आत्मा की आकांक्षा है।

अनुभूति ही आप्तत्व है। अनुभूति केवल सत्य में है। वह क्षमता, योग्यता एवं पात्रता पर निर्भर है। वह जाग्रति पर; जाग्रति इच्छाओं पर; इच्छाएँ संस्कारों पर; संस्कार वातावरण, अध्ययन एवं पूर्व संस्कारों पर तथा संस्कार वातावरण अध्ययन एवं पूर्व संस्कार अनुभूति पर आधारित पाया जाता है।

अनुभूति वर्ग, मत, संप्रदाय, पक्ष, भाषा की सीमाओं से बाधित नहीं है।

अनुभूति योग्य अर्हता को उत्पन्न कर देना ही संस्कार है।

ब्रह्मानुभूति योग्य अर्हतार्पयन्त संस्कार पूत होना भावी है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - पाँच

जिस मनुष्य के उत्पादन का अधिकांश वितरण में और न्यून अंश, उपयोग सदुपयोग के निमित्त प्रयुक्त होता है वही श्रेष्ठ मानव है। वही ब्रह्मानुभूति क्षमता को पाने का अधिकारी है।



शरीर के द्वारा संपन्न होने वाला उत्पादन, वितरण, व्यवहार एवं भोग ही ज्ञानात्मा का लक्ष्य नहीं है। ज्ञानात्मा आनंद की निरंतरता चाहता है। यह जागृति पूर्वक सफल होना पाया जाता है।

ज्ञानात्मा बौद्धिक समाधान के बिना संतुष्ट नहीं है।

ज्ञानात्मा को न्याय पूर्ण व्यवहार के बिना शान्ति नहीं है।

नियमपूर्वक उत्पादन के बिना उत्पादन का विपुलीकरण नहीं है।

उत्पादन मात्र का आस्वादन स्थूल शरीर के पोषण, संरक्षण एवं समाज गति-सीमान्तवर्ती उपादेयी है।

यांत्रिक-तांत्रिक प्रयोग भी उत्पादनापेक्षा में निहित है।

प्रत्येक आवश्यकीय आस्वादन से जड़ पक्ष की पुष्टि होती है। चैतन्य पक्ष के मन को सुख या दुख भी भास सकता है।

सुख के भास-आभास का कारण ही है उसकी निरंतरता के लिए जिज्ञासा। अर्थ का विपुलीकरण सुख की निरंतरता का साधन सिद्ध नहीं हुआ। साथ ही सार्थक अर्थ अपेक्षणीय है, क्योंकि जड़ शरीर के पोषण संरक्षण व समाज गति के निमित्त उत्पादन आवश्यक है। इसी में सभ्यता एवं आचरण प्रकट होता है। जिसकी अक्षुण्णता ही अग्रिम विकास एवं जाग्रति सहज परंपरा का उदय है।

न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवहार ही सुख एवं शान्ति की निरंतरता है।

धर्म पूर्ण विचार ही समाधान है, जो संतोष की निरंतरता है।

धर्मविहीन वस्तु या इकाई नहीं है।

प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म का अध्ययन प्रसिद्ध है।

ब्रह्मानुभूति ही परमानंद है। यही आनंद की निरंतरता है।

चैतन्य इकाई में गठन-परिणाम नहीं है। साथ ही क्रिया और आचरण में परिमार्जन, गुणात्मक परिवर्तन प्रसिद्ध है।

आशा, आकाँक्षा, विचार, विवेक और कला, कुशलता-निपुणता तथा पाण्डित्य के अनुरूप में क्रिया आस्वादन एवं अनुभूति के भेद से प्रत्यक्ष है।

प्राप्य का ही आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है।

प्राप्त में ही अनुभूति है “यह” ब्रह्म, ज्ञान, सत्य है।

व्यापक ब्रह्म है।

“यह” एवं इसकी अनुभूति देश-कालादि सीमा से मुक्त है।

आस्वादन मात्र से भी सुख, संतोष, आनंद भासता है विलासिता भी इसी उपादेयता की सीमा में सीमित है, इसलिए -

विलासिता से आनंद की निरंतरता नहीं है। यदि होती तो विलासिता की भी निरंतरता होती।

किसी भी प्रकार का भोग-विलास या आराम एक अवधि के अनंतर अप्रिय, असहनीय तथा अनावश्यक होता है। यह प्रसिद्ध है।

आहार-विहार शय्या की क्षण भंगुरता प्रसिद्ध है।

मानवीयता पूर्ण जीवन में आहार-विहार शय्या आदि में संयम तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन के सिद्धांत की स्थापना एवं पालन

होता है।

ऐषणात्रय में वित्तेषणा से पुत्रेषणा तथा पुत्रेषणा से लोकेषणा श्रेष्ठ होने के कारण मानवीयता से अधिक स्थिति (अतिमानवीयता) को पाने के लिए जिज्ञासा प्रसिद्ध है।

मनुष्य लोकेषणा में, से, के लिए उत्पादन के अधिकांश को नियोजित करता है। फल ही है कि वित्त और पुत्र की ऐषणाओं तक सीमित जनमानस उन्हीं के मार्गदर्शन में सुरक्षित रहना व उनसे प्रेरणा प्राप्त करना चाहते हैं।

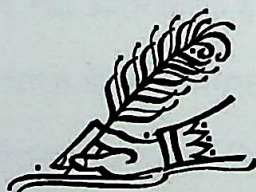
लोकेषणायुक्त मनुष्य में धर्म, सत्य पूर्ण दृष्टि; वीरता, उदारता एवं दया पूर्ण स्वभाव है। यही देवमानव है। वे निर्विवाद रूप से अन्य अजाग्रत इकाइयों के मार्गदर्शक है।

जिस मनुष्य के उत्पादन का अधिकांश वितरण में और न्यून अंश उपयोग, सदुपयोग के निमित्त प्रयुक्त होता है वही श्रेष्ठ मानव है। वही ब्रह्मानुभूति क्षमता को पाने का अधिकारी है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - छः

ब्रह्मानुभूति सम्पन्न मानव ही जड़
प्रकृति की आसक्ति से मुक्त है
जिसका जीवन भ्रम मुक्त अवस्था
में है ।



ज्ञानात्मा, जीवात्मा, जड़, प्रकृति तथा परमात्मा सहज समझदारी एवं उसके अनुभव की चर्चा प्रसिद्ध है। यही जीव जगत एवं ईश्वर का अध्ययन है। दृष्टा पद प्रतिष्ठा में अध्ययन करने वाला मानव ही है।

पदार्थ-व्यूह क्रिया-समूह ही प्रकृति है।

व्यापक ज्ञान पूर्ण है।

असंख्य स्थान में पदार्थ-व्यूह की स्थिति श्रम, गति, परिणाम पूर्वक हास विकास के भेद-प्रभेद से प्रत्यक्ष है।

ज्ञान में पाए जाने वाले विभिन्न स्थानगत पदार्थ-व्यूह में से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार अवस्थाओं में परिलक्षित है, जो पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाएं हैं।

जड़ पदार्थ के विकास का चरमोत्कर्ष ही प्राणावस्था, प्राणावस्था का अंतिम विकास ही चैतन्य जीवावस्था, चैतन्य जीवावस्था का उच्चतम विकास ही चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था, चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था का विकास ही भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था, भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था का सर्वोच्च विकास ही निर्भ्रान्त देव एवं ज्ञानावस्था दिव्यावस्था है।

चैतन्य ज्ञानात्मा का अंतिम विकास ब्रह्मानुभूति है। ज्ञान में ही ज्ञानात्मा का अनुभव पूर्ण है। इसमें संदिग्धता नहीं है।

पूर्ण में अनुमान विलय होता है।

अनुमान के बिना पुनरानुभव के लिए प्रयासोदय नहीं है इसलिए दर्शन के लिए प्रकृति से अधिक विशालता नहीं है उसके दर्शन क्रम में स्वयं का अध्ययन स्पष्ट है। स्वयं की अध्ययन-स्पष्टता ही ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता है जो प्रसिद्ध है।

मानव अनुभव दर्शन (अध्याय - छः)

भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानात्मा की अग्रिम जाग्रति ही निर्भ्रान्त देवात्मा, निर्भ्रान्त देवात्मा का पूर्ण विकास ही निर्भ्रान्त दिव्यात्मा पद-प्रकट है। यह गुणात्मक विकास श्रृंखलाबद्ध सिद्ध है। इस समग्र जाग्रति क्रम का आधार, प्रेरणा एवं त्राण भी केवल ज्ञान में ही है।

अधिक और कम की गणनाएँ अपेक्षाकृत हैं तथा भाव और अभाव भी हैं।

काल, विस्तार और इकाई की गणनाएँ हैं।

जड़ता के प्रति आसक्ति स्वतंत्रता का लक्षण नहीं है। उससे मुक्ति के लिए उपदेश है, यह जाग्रित के लिए प्रेरणा है।

प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र होना व रहना चाहता है।

अनुभव समुच्चय ही स्वतंत्रता है। दर्शन समुच्चय पूर्वक कार्यक्रम-समुच्चय का अनुसरण करना ही साधना है। फलतः अनुभव है।

मानव में अनादि काल से अमरत्व और अजेयत्व की कामना विद्यमान है।

मनुष्य पराजय नहीं चाहता।

मनुष्य में बल बुद्धि -रूप-पदधनात्मक विभूतियों की उपलब्धियाँ प्रत्यक्ष हैं।

निर्भ्रम अवस्था में बुद्धि अजेय और ज्ञानात्मा अमर है। जिसका अनुभव प्रसिद्ध है। निर्भ्रम अवस्था में जीवन स्वयं अमर और अजय है। यही संप्रभुता है।

स्वतंत्रता ही अजेयत्व एवं अनुभव ही अमरत्व है। यही क्रम से

सतर्कता एवं सजगता है जिसके लिए ज्ञानात्मा प्यासी है।

स्त्री एवं पुरुष शरीरों के आकार मात्र जड़ संरचना अलग तथा वैचारिक दातव्यता का विभव समान है।

चैतन्य पुँज ही वैचारिक दातव्यता है। दातव्यता का अर्थ है देने की प्रवृत्ति।

सूक्ष्म शरीर जिस आकार-प्रकार वाले शरीर को माध्यम बनाकर आस्वादन क्रिया में रत रहता है, सदैव उससे अधिक आस्वादन-सुख ले सकने की कल्पना करता है।

इसी क्रम में मनुष्य शरीर का भी प्रादुर्भाव हुआ है। इससे अधिक की संभावना नहीं है। भोग से अधिक भोग पदार्थों को एकत्रित करने में सुख की निरंतरता सिद्ध नहीं होती है। इसके साथ यह भी ज्ञात हो गया है कि ब्रह्मानुभूति ही परमानंद की निरंतरता है, इसलिए -

प्राणयुक्त कोषिकायें जो मानव शरीर की रचना में व्यस्त एवं क्रियाशील हैं। सूक्ष्म शरीर के निर्देशानुसार आकार प्रदान करने के लिए प्रयास रत है।

पदार्थावस्था गति पूर्वक सापेक्ष रूप में परिणामशील है।

गति एवं परिणामशील पदार्थ ही प्राणावस्था में वातावरण के दबाव से गुणात्मक परिवर्तन को पाकर प्राण युक्त कोषिकाओं के रूप में प्रसवित होता है। प्राणयुक्त कोषिकाएँ वातावरण स्व-क्षमता व अवसर के योगफल स्वरूप रचनारत है। यही वनस्पति-सृष्टि के रूप में प्रत्यक्ष है।

जीवात्माओं की शरीर रचना भी प्राण-कोशिका समूह से निर्मित होती है। इस रचना में मेधस एक विशिष्ट भाग समाहित रहता है।

जिसे प्राणावस्था में नहीं पाया जाता है। ऐसे शरीर द्वारा जीवात्मा आशापूर्वक भोगों में व्यस्त रहता है, जो प्रत्यक्ष है।

वातावरणानुसार जीवात्मा के शरीर तथा उनकी आशा में परिवर्तन शीलता प्रत्यक्ष होती है। यही प्रक्रिया विषय-परिणाम को प्रकट करती है।

जीवात्मा एवं ज्ञानात्मा के शरीर संरचना में अधिकांश समानता रहते हुए भी ज्ञानात्मा के शरीर में जीवात्मा की अपेक्षा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धेन्द्रियों में विशिष्टताएं हैं ही। ऐसे शरीर द्वारा प्रत्येक ज्ञानात्मा उत्पादन, व्यवहार, उपयोग, उपभोगात्मक क्रियाकलापों को स्वयं के आशा-विचार-इच्छा संकल्पानुरूप करता है, तदनुसार उसमें वैचारिक परिवर्तन-परिमार्जन होता है। फलतः अनुभवाभिलाषी एवं प्रयासी भी होता है। इसी क्रम में जिज्ञासा एवं प्रयासपूर्वक गुणात्मक विकास से संपन्न होता है। फलतः अनुभव होता है।

अनुभव = सत्य = व्यापक = शून्य = परमात्मा = ज्ञान = साम्य
= सत्ता = ब्रह्म = अनुभव है।

अनुभव इकाई की अर्जित क्षमता, योग्यता, पात्रता है। यही जाग्रति का चरमोत्कर्ष व लक्ष्य है, जिसके निमित्त ही आद्यांत प्रयास है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - सात

ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है । अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि-व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा प्रणाली, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है ।



जड़ क्रिया का अंतिम परिणाम चैतन्य, चैतन्य की अंतिम जाग्रति ज्ञानानुभूति ही है।

परिणाम ही जड़ प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के रूप में परिलक्षित है। चैतन्य प्रकृति में विचार, गुणात्मक परिवर्तन एवं परिमार्जन द्रष्टव्य है।

प्रत्येक उत्पत्ति के पूर्व उसकी स्थिति भिन्न थी। इसलिए सम्यक विवेचना के उपरान्त अनंत स्थितियों में रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के आधार पर वैविध्यता की स्थिति स्पष्ट है।

विवेचनाधिकार ज्ञानावस्था में सिद्ध हुआ है।

विवेचना मात्र रूप, गुण स्वभाव और धर्म की ही है।

उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की गणना केवल भौतिक एवं रासायनिक परिणाम व परिवर्तन की सीमान्तवर्ती है, जो मरणशील है। अर्थात् अग्रिम परिणाम भावी है।

चैतन्य ज्ञानात्मा का अनुभव सीमान्तवर्ती क्षमता पूर्ण होने की संभावना है साथ ही उसके योग्य परिमार्जनशीलता भी प्रसिद्ध है।

चैतन्य सदा ही जाग्रति के क्रम में है। निद्रा जड़ का स्वभाविक गुण है।

जाग्रति की तुलना में ही स्वप्न एवं सुषुप्ति का अध्ययन है। सत्ता में अनुभूति एवं दर्शन योग्य क्षमता ही जागृति है। अनुभूति योग्य क्षमता पर्यन्त रूप, गुण, स्वभाव की अभिव्यंजना भावी है। जिससे हर्ष-शोकादि द्वन्द्व का प्रसव है।

विषम मध्यस्थ में, मध्यस्थ व्यापक में समाधानित, संतुष्ट एवं आप्लावित है। इसी प्रकार अमानवीयता मानवीयता में, मानवीयता

अतिमानवीयता में क्रम से तृप्त, संतृप्त और अतिसंतृप्त है।

रहस्यता से अज्ञान, अज्ञान से भ्रम, भ्रम से मोह, मोह से अक्षमता, अक्षमता से अमानवीयता और अमानवीयता से ही रहस्यता है।

यथार्थ की अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को पा लेना ही जाग्रति है।

क्रिया का अभाव नहीं है, इसलिए जाग्रति का अभाव नहीं है।

लक्ष्य के बिना जाग्रति नहीं है।

लक्ष्य, विश्राम ही है।

वह केवल सत्य में ज्ञान एवं अनुभव है।

मानव जीवन का लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष तथा आनंद ही है।

रूप और गुण के योगफल में विषम, रूप-गुण, स्वभाव के योगफल में सम, रूप-गुण स्वभाव धर्म के योगफल में मध्यस्थ प्रतिष्ठा है। यही प्रकृति की संपूर्ण प्रतिष्ठा है। यही रासायनिक एवं भौतिक सीमा में उद्भव, विभव, प्रलय क्रिया है। चैतन्य अवस्था में गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता को सिद्ध किया है। यही पूर्ण जाग्रति है। अनुभव मूलक अभिव्यक्ति है।

इकाई रूप-गुण-स्वभाव एवं धर्म के योगफल में ही स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का अनुभव करती है। यही सामाजिकता का परिणाम एवं पूर्ण सतर्कता है। इस क्षमता से परिपूर्ण होते तक मनुष्य में गुणात्मक परिमार्जन भावी है। अनुभव सत्य में है। अनुभव में संदिग्धता नहीं है।

संदिग्धता पर्यन्त अनुभव नहीं है। अनुभव में संदिग्धता पर्यन्त परिवर्तन, परिमार्जन भावी है। यही नियति क्रम है।

सृष्टि में पाए जाने वाले तिरोभाव, भाव, अभाव, परिणाम, परिपाक संबंध, ज्ञान योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता की अपूर्णता ही माया है।

वातावरणस्थ वस्तुस्थिति संकेत ग्रहण योग्यता, व्यापक में स्थिति ज्ञान क्षमता, इकाई के जाग्रति पर आधारित है। ऐसी क्षमता की अपूर्णता वैविध्यता है। फलतः अमानवीयता पीड़ा है।

अभिव्यंजना की पूर्ण ग्रहण क्रिया या वस्तुस्थितिवत्ता की पूर्ण स्वीकृति ही अनुभूति है।

प्रकृति ब्रह्म में संपृक्त है। प्रकृति के अपेक्षाकृत विकास के आधार पर अधिक विकसित की अभिव्यंजना (अभिप्राय सहित व्यंजना) और कम विकसित की व्यंजना प्रसिद्ध है। अभिव्यंजना में गुणात्मक विकास का संकेत, व्यंजना में उपयोगिता का संकेत है। अभ्युदय प्रायः (अभ्युदय जैसा) ही अभिप्राय है। जिसमें अभ्युदय का भास या आभास होना आवश्यक है।

मनुष्य जागृत अवस्था में सृष्टि की नित्यता एवं परिणामशीलता का, स्वप्नावस्था में उसकी अनित्यता एवं क्षण भंगुरता का, सुषुप्ति में स्वयं की जड़ता का भास-आभास एवं अनुमान करता है। इसी का परिणाम है कि ये सब अनुभूति के लिए त्वरण की भूमिका का निर्वहन करते हैं। निद्रा जड़ शरीर की आवश्यकता है, न कि चैतन्य क्रिया की आवश्यकता।

संपूर्ण प्रकृति ब्रह्म में अनुप्राणित पाई जाती है। अस्तु, उसकी अनुभूति-योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक आनंद की

निरंतरता नहीं है। उसके लिए मानवीयता पूर्ण व्यवहार, अतिमानवीयता योग्य अभ्यास ही एक मात्र उपाय है।

संवेदन क्रिया ही क्रिया के साथ आस्वादन सान्निध्य और संघर्ष की स्थिति में है। आस्वादन की क्षण भंगुरता, सान्निध्य में प्रेरणा, संघर्ष की असहनीयता प्रसिद्ध है।

सृष्टि की सम-विषमात्मक क्रिया में आवेश का अभाव नहीं है।

आत्मा अनुभवाभ्यासी, बुद्धि बोधाभ्यासी, चित्त चिन्तनाभ्यासी, वृत्ति तुलनाभ्यासी और मन आस्वादनाभ्यासी है। ज्ञानावस्था की इकाई अतिमानवीयतापूर्ण, मानवीयतापूर्ण एवं अमानवीयतावादी आचरण को अपने जाग्रति के स्तर के अनुरूप प्रकट करती है।

सान्निध्यानुभूति-पर्यन्त सतर्कता क्रियाशील है। अनुभूति ही सजगता है जिसकी निरंतरता है। यही सहज है।

सम-विषम आवेश को मध्यस्थ क्रिया ही आत्मसात करती है अर्थात् सामान्य करती है।

अभाव, रोग, संशकता एवं संदिग्धात्मक स्थितियाँ, अविवेक, अत्याशा प्रमाद सहित संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भयात्मक मूल प्रवृत्तियाँ सभी क्लेशों का कारण है, जिनका निराकरण विवेक व विज्ञानपूर्ण ज्ञान का प्रयोग तथा अभ्यास ही है। सत्कर्म (विकासानुकूल) में प्रवृत्ति हेतु आत्मा का उपदेश है।

क्लेश व हर्ष कर्म-परिपाकवश ही भासित होते हैं।

ब्रह्मानुभूति योग्य अधिकार पाना ही चित्त शुद्धि है। यही चैतन्य

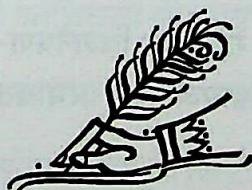
क्रिया का चिरंतन कार्यक्रम है।

ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि-व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा-प्रणाली, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - आठ

प्रत्येक इकाई का विकास व हास उसकी गति से उत्पन्न सापेक्ष शक्ति के अंतर्नियोजन तथा बहिर्गमन की प्रक्रिया पर आधारित है ।



चेतना, चैतन्य एवं जड़ की चर्चा है।

चेतना ही ब्रह्म सत्ता है।

जड़ ही विकासपूर्वक चैतन्य अवस्था में प्रतिष्ठित होता है।

परमाणु की सीमा में ही विकास और ह्रास का दर्शन है।

रचनाएं अनेक अणु-परमाणु के संघटित पिण्ड के रूप में दृष्टव्य है। जड़ प्रकृति की रसायन-क्रिया-प्रक्रिया, प्रभाव और परिणाम ही सीमा है। वह चैतन्य और चैतन्यता नहीं है।

प्रस्थापन एवं विस्थापन प्रक्रिया ही रासायनिक एवं भौतिक सीमा की गरिमा है।

परमाणु में पाए जाने वाले अंशों की संख्या वृद्धि ही प्रस्थापन घटना एवं न्यून होना ही विस्थापन घटना है। किसी एक परमाणु में अंशों की वृद्धि के लिए दूसरे परमाणु में अंशों का घटना आवश्यक है।

जड़ प्रकृति की सीमा में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प का प्रकटन नहीं है।

सत्ता में प्रकृति स्थित है।

दृश्य ही प्रकृति है और दर्शक भी प्रकृति का ही विकसित अंश है। सम्यक दर्शन सम्पन्न जीवन ही निर्भ्रम इकाई है। दर्शन क्षमता जागृति का द्योतक है। अस्तित्व से अधिक अनुमान नहीं है।

स्थिति भास रहते हुए विश्लेषण-अनुभव का अभाव ही ज्ञातव्यता में अपूर्णता, प्राप्तव्यता में अभावता है। फलतः होतव्यता में शंका दृष्टव्य है।

क्रियात्मक अस्तित्व जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का प्रसिद्ध

लक्षण है।

“मैं हूँ” का प्रकटन ज्ञानावस्था में विचार पूर्वक व्यवहार व विहार के रूप में, “होने” का प्रकटन जीवावस्था में आशा पूर्वक विहार के रूप में, प्राणावस्था में रचनापूर्वक आस्वादन के रूप में, पदार्थावस्था में गठन पूर्वक गति के रूप में दृष्टव्य है।

“सत्तात्मक अस्तित्व और दृश्यात्मक अस्तित्व प्रसिद्ध है।”

सत्ता में प्रकृति दृश्यात्मक अस्तित्व के रूप में है और सत्तात्मक अस्तित्व पूर्ण है। पूर्ण का खंडन-विखंडन नहीं है। यदि खंडन-विखंडन है तो वह पूर्ण नहीं है। खंड की सीमा परिणाम दिशा और क्रिया है। काल, विकास और ह्रास भी परिणाम है। परिणाम ही इकाईत्व है। यही संख्या और समूह है। सम्यक् प्रकार से ख्यात होना ही संख्या है। अपूर्णता ही सीमा, सीमा ही इकाईत्व, इकाईत्व ही संख्या, संख्या ही अस्तित्वशीलता, अस्तित्वशीलता ही क्रिया, क्रिया ही परिणाम, परिणाम ही सापेक्षता, सापेक्षता ही विकास एवं ह्रास, विकास ही गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता व आचरण पूर्णता ही अमरत्व सतर्कता व सजगता, अमरत्व सतर्कता व सजगता ही दर्शन-क्षमता, दर्शन क्षमता ही पूर्णानुभूति और पूर्णानुभूति ही इकाईत्व का विश्लेषण है। गठनपूर्णता ही चैतन्यता व अमरत्व, सामाजिकता ही सतर्कता एवं सहअस्तित्व अनुभूति ही सजगता एवं पूर्ण विश्राम है।

अस्तित्व पूर्ण सत्ता में प्रकृति की स्वीकृति = सत्याभास

अस्तित्व की आंशिकता की स्पष्ट स्वीकृति = आभास

अस्तित्व स्पष्टता तथा प्रयोजन सहित स्वीकृति = प्रतीति

अस्तित्व संपूर्णता में, से, के लिए अनुभव प्रसिद्ध है।

वस्तुगत सत्यता सहज उद्घाटन क्रिया-प्रक्रिया एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखंड सामाजिकता का आचरण-अनुसरण एवं अनुशीलन ही व्यवहार समाधान एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखण्ड सामाजिकता का आचरण-अनुसरण एवं अनुशीलन ही व्यवहार, समाधान एवं अनुभूति निरंतरता हेतु किया गया प्रयास, पद्धति एवं प्रणाली ही अभ्यास है। उपयोगिता, उपादेयता एवं अनिवार्यता देश-काल-अधिकार व उपलब्धि की अपेक्षा में निर्णीत है। प्रकृति के विकास की श्रृंखला में पाए जाने वाले अंतिम हास तथा विकास का दर्शन स्पष्ट होना, साथ ही उसमें पाए जाने वाले नियमों का विश्लेषित होना ही अध्ययन है। अध्ययन से संबंधित क्रिया ही प्रयोग, व्यवसाय, व्यवहार, प्रयास एवं अभ्यास है।

प्रयोग पूर्वक ही रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का अनुभव है, जिसका प्रत्यक्ष रूप ही है भौतिक समृद्धि।

प्रयास पूर्वक मनुष्य द्वारा ही मनुष्य की परस्परता में निहित मूल्य का निर्वाह किया जाता है जो व्यवहार है, इसका प्रत्यक्ष रूप ही सह-अस्तित्व है, यही व्यावहारिक समाधान है।

मनुष्य अभ्यास पूर्वक ही मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता में प्रतिष्ठित होता है जिसका प्रत्यक्ष रूप दया, कृपा एवं करुणा है।

“नित्यम् यातु शुभोदयम्”

अध्याय - नौ

सम्पूर्ण अविकसित विकसित के लिए साधन व विकसित अविकसित के लिए उपयोगी हैं क्योंकि विकसित अविकसित में पूरकता सूत्र वर्तमान रहता है । साधन को साध्य समझना ही अज्ञान है ।



मानवीयतापूर्ण जीवन सतर्कतापूर्ण होता है। दिव्य मानवीयता पूर्ण जीवन सजगता परिपूर्ण होता है।

समाधानपूर्वक या समाधानगामी तर्क ही सतर्कता है।

निर्भ्रमता ही सजगता है। निर्भ्रमता ही जागृति है। विकासानुक्रम में श्रम, गति, परिणाम प्रसिद्ध है।

गन्तव्य के लिये गति, विश्राम के लिये श्रम, अमरत्व के लिए परिणाम स्पष्ट है।

गठन, क्रिया एवं आचरण पूर्णता पर्यन्त श्रम का अभाव नहीं है। रासायनिक सीमा से मुक्ति गठन पूर्णता से, अमानवीयता की सीमा से मुक्ति क्रिया की परिपूर्णता से, ऐषणाओं से मुक्ति आचरण की पूर्णता से चरितार्थ होती है। आचरण की पूर्णता ही जीवन की प्रतिष्ठा है।

देवमानवीयता पूर्ण जीवन में क्रिया पूर्णता पर अधिकार तथा पुत्रेषणा से मुक्ति एवं सजगता की प्रतीति पाई जाती है।

अभ्युदय पूर्वक ही गन्तव्य, आचरण में पूर्णता प्रत्यक्ष है। यही जीवन मुक्ति-सजगता-परमानन्द तथा दिव्य मानवीयता है। गति की गुणात्मक संक्रमण क्रिया ही अभ्युदय है। यही सर्वतोमुखी समाधान है।

परिणाम ही क्रम से गठनपूर्णता, अमरत्व, अस्तित्व, चैतन्य, जीने की आशा एवं प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट है।

वस्तु स्थिति-सत्य, वस्तुगत सत्य तथा स्थिति सत्य के प्रति संदिग्धता ही भ्रम है, जो जागृति में अपूर्णता है।

परमाणु की सीमा में गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता एवं आचरण

पूर्णता पाई जाती है।

निर्भ्रमता ही सजगता, सजगता ही अनुभव, अनुभव ही जागृति एवं जागृति ही निर्भ्रमता है।

दूर-दूर तक या सीमा विहीन का उदय ही जागृति है। व संप्रेषणा, अभिव्यक्ति ही प्रमाण है।

अज्ञान, ज्ञाता की अक्षमता का द्योतक है, न कि ज्ञान का अभाव। यह जागृति पूर्ण क्षमता से ही प्रमाणित होता है। वस्तु-स्थिति एवं वस्तुगत सत्य का दर्शन, स्थिति सत्य (सत्ता) में अनुभव उदय ही जागृति है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई में किसी न किसी अंश में उदय दर्शन क्षमता द्रष्टव्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई अपनी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई से अधिक क्षेत्र में क्रियाशील है, यह उदय का मूल कारण है। उदय ही अनुमान है।

ब्रह्मानुभूति-पर्यन्त उदय का अभाव नहीं है साथ ही अनुमान का भी अभाव नहीं है। अनुभव में ही अनुमान तिरोहित होता है यह प्रसिद्ध है।

चैतन्य इकाई ने निर्भ्रम पूर्वक आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभूति को दूर-दूर तक फैला हुआ देखा है, यही वह उदय है जिसमें अंधकार में प्रकाश का, मृत्यु में अमरत्व का, अज्ञान में ज्ञान का अनुभव है।

वस्तु-स्थिति में देश-काल-दिशा-परिमिति को वस्तुगत स्थिति में रूप, गुण स्वभाव की परिमिति तथा धर्म की विशालता को

स्पष्ट किया है। अनुभव में ही अपरिमिता को प्रमाणित किया है। पूर्ण ही ब्रह्म, ब्रह्म ही प्रत्यक्ष है। यही पूर्ण वैभव है।

प्रत्येक इकाई की स्थिति अन्य की अपेक्षा में स्वयं की दिशा स्पष्ट करती है।

अनुभव-मूलक विचार ही व्यवहार में सह-अस्तित्व तथा व्यवसाय में समृद्धि है।

ज्ञान अनुभव तथा क्रिया दर्शन है।

स्थितिवत्ता का ज्ञान ही बोध एवं उसका अनुभव ही जाग्रति है।

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की सम- विषमात्मक, अतिरेक का नियंत्रण मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में है, इसलिए उसका अनुभवानुशासन प्रसिद्ध है।

अनुभवानुशासन ही प्रबुद्धता है।

प्रबुद्धता ही सतर्कता है।

यही अभयता, सामाजिकता, सह-अस्तित्व, अभ्युदय एवं प्रबुद्धता है।

सजगता एवं सतर्कता ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है। पांडित्य-पूर्ण सतर्कता ही बौद्धिक समाधान है यही व्यवहार में निर्वाह क्षमता तथा व्यवसाय में कुशलता एवं निपुणता पूर्ण योग्यता है।

सजगता ही अनुभव क्षमता और सतर्कता ही समाधान क्षमता

है। शिक्षा प्रणाली एवं व्यवस्था पद्धति की सीमा में सतर्कता-योग्य क्षमता को जन-सामान्य बनाने की व्यवस्था है।

किसी अंश में सजगता एवं सतर्कता ज्ञानावस्था की इकाई में पाई जाने वाली अविभाज्य क्षमता है जिसकी पूर्णता के लिए वह विवश है। उसकी पूर्णता ही विकास है जो मानवीयता एवं अतिमानवीयता है।

अतिमानवीयता ही आनंद है। मानवीयता ही सामाजिक कार्यक्रम का आधार है अतिमानवीयता पर्यन्त जीवन का कार्यक्रम है। अमानवीयता व्यतिक्रम है।

ज्ञानावस्था ही निर्धर्मता का निकटतम पद है।

ज्ञानावस्था का धर्म ही आनंद है।

चैतन्य इकाई का प्रथम साधन शरीर ही है।

शरीर की सीमा में जो जाग्रति स्वप्न-सुषुप्ति है, वह विषय व राग की सीमा में गण्य है। शरीर का संचालक (चैतन्य क्रिया) संचालन क्रिया को रोकता है या कम करता है। तब शरीर निद्रा में रत होता है।

अन्य सभी साधन शरीर द्वारा निर्मित है जो सामान्य एवं महत्वाकांक्षा की सीमा में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

साधन साध्य नहीं है। साध्य के लिये साधन आवश्यक है।

संपूर्ण अविकसित, विकसित के लिये साधन व विकसित अविकसित के लिए उपयोगी है क्योंकि विकसित अविकसित में पूरकता सूत्र वर्तमान रहता है। साधन को साध्य समझना ही अज्ञान है।

जड़ में चिंतन-क्रिया नहीं है।

प्रत्यक्ष से अधिक की अनुमान क्षमता ही चिंतन का प्रधान लक्षण है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक समग्र प्रकृति के प्रति रहस्यता का अभाव न हो जाए। जो जिस अस्तित्व के प्रति निर्भ्रम न हुए भी उस अस्तित्व को स्वीकारता है, वही अनुमान है।

चैतन्य इकाई ही अनुभव पूर्वक जाग्रत है।

दिव्य-मानव पूर्ण जागृत, देव-मानव जागृत, मानव अर्ध-जागृत, अमानवीय मनुष्य अल्प जागृत तथा जीव मात्र अजागृत है। मानव अर्धजागृत का तात्पर्य क्रिया पूर्णता में जागृत, देवमानव जागृत का तात्पर्य क्रियापूर्णता में परिपूर्ण व आचरण पूर्णता में जागृत एवं दिव्य मानव पूर्ण जाग्रत का तात्पर्य क्रिया व आचरणपूर्णता में परिपूर्ण व प्रमाण।

चैतन्य पद के अनंतर ही जाग्रति और सतर्कता की बाध्यातं है।

सतर्कता ही विवेक है, यही आत्मा का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियम का निर्णय करने योग्य योग्यता, क्षमता एवं व्यवहार करने योग्य योग्यता है।

सतर्कता की अंतिम उपलब्धि समाधान है। सजगता की अंतिम उपलब्धि ही परमानंद है, जिसमें निरंतरता है। यही सहजता है।

स्वयं की ब्रह्म में ओत-प्रोत स्थिति, सत्य-ज्ञान में निरंतरता ही परमानंद है।

परमानंद निरंतरता में दया-कृपा-करुणा निःसृत होती है। यह अविकसित के विकास के लिये सर्वाधिक उपयोगी है।

अनुभव+अनुमान+ प्रयोग, व्यवहार व अभ्यास = पुनः अनुभव । अनुभव प्रक्रिया ज्ञानावस्था में प्रसिद्ध है ।

ब्रह्म (पूर्ण) में अनुभव प्रमाण सहित इंगित किया है साथ ही प्रकृति की चारों अवस्थाओं के विश्लेषण को व्यवहार प्रमाण सहित व्याख्यायित किया है और प्रयोग प्रमाण को भी स्वीकारा है । जिसके सुदृढ़ आधार पर सर्वमंगल कार्यक्रम अर्थात् मानव जीवन में अभ्युदयात्मक कार्यक्रम निर्विवाद रूप में स्पष्ट हुआ है जो पूर्णतया व्यवहारिक है । यह सर्वसुलभ होने की कामना है जिससे ही :-

**भूमि स्वर्ग होगी, मनुष्य देवता होंगे ।
धर्म सफल होगा, एवं नित्य मंगल होगा ॥**

प्रकाशित व प्रकाशनाधीन प्रबन्ध

“अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन” के रूप में ‘मध्यस्थ दर्शन’ सह-अस्तित्ववाद है। इसके प्रणेता एवं लेखक श्री ए. नागराज, अमरकण्टक हैं। इसमें अस्तित्व दर्शन को विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

दर्शन

- | | |
|---------------------------|------------|
| 1. मानव व्यवहार एवं दर्शन | (प्रकाशित) |
| 2. मानव अनुभव दर्शन | (प्रकाशित) |
| 3. मानव अभ्यास दर्शन | (प्रकाशित) |
| 4. मानव कर्म दर्शन | (प्रकाशित) |

शास्त्र

- | | |
|--------------------------------|------------|
| 1. व्यवहारवादी समाजशास्त्र | (प्रकाशित) |
| 2. आवर्तनशील अर्थचिंतन | (प्रकाशित) |
| 3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान | (प्रकाशित) |

वाद

- | | |
|---------------------------|------------|
| 1. समाधानात्मक भौतिकवाद | (प्रकाशित) |
| 2. व्यवहारात्मक जनवाद | (प्रकाशित) |
| 3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद | (प्रकाशित) |

योजना

- | | |
|--|---------------|
| 1. जीवन विद्या योजना | (प्रकाशनाधीन) |
| 2. मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना | (प्रकाशनाधीन) |
| 3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना | (प्रकाशित) |

अन्य

- | | |
|--|------------|
| 1. परिभाषा संहिता | (प्रकाशित) |
| 2. जीवन विद्या - एक परिचय | (प्रकाशित) |
| 3. अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास | (प्रकाशित) |
| 4. मानवीय संविधान का प्रारूप | (प्रकाशित) |
| ★ जीवन विद्या गीत (लेखक-प्रदीप पूरक) | (प्रकाशित) |

प्राप्ति - स्थान

- ⇒ श्री एन. एस. पुराणिक ☎ (0771) 2428391
 (मध्यस्थ-दर्शन वाङ्मय हेतु मुख्य वितरण केन्द्र)
 ए-1 प्रोविजन स्टोर्स के पास, न्यू शान्तिनगर,
 पो. - शंकरनगर, जिला - रायपुर (म.प्र.)
- ⇒ डॉ. रणसिंह आर्य ☎ (01342) 287511
 जीवन विद्या प्रतिष्ठान, गोविन्दपुर (खारी) 287060
 बाया - झालू, बिजनौर, उ. प्र. - 246728.
- ⇒ श्री राजन शर्मा ☎ (07821) 258222
 अभ्युदय संस्थान ग्राम - अछोटी (0771) 2250502
 जिला - दुर्ग (छत्तीसगढ़)
- ⇒ श्री गणेश बागड़िया ☎ (0512) 2581669
 मानवीय शिक्षा संस्कार संस्थान, कानपुर (उ.प्र.) 2780780
- ⇒ श्री पवन गुप्ता ☎ (0135) 2632904
 "सिद्ध" कैम्पटी गांव, मसूरी (उत्तरांचल) (01376) 224203
- ⇒ श्री डॉ. आर.आर. गौड़ ☎ (011) 26851352
 राष्ट्रीय मूल्य शिक्षा केन्द्र, आई.आई.टी. नई दिल्ली 26591908
- ⇒ श्री यशवंत कुमार सिंधु (स्व. सेनानी) ☎ (07673) 32034
 द्वारा - अवधेश श्रीवास्तव, आर.बी./22बी,
 सिविल लाइन्स - नागौद, जिला-सतना (म.प्र.)
- ⇒ श्री भारत भूषण त्यागी ☎ (05736) 271869
 चैतन्य शिक्षा संस्थान, ग्रा.-बिहटा (स्याना) जिला-बुलन्दशहर (उ.प्र.)
- ⇒ श्री प्रेम सिंह ☎ (05192) 227368
 बड़ोखर (खुर्द), जिला-बाँदा (उ.प्र.)
- ⇒ श्री अशोक सिरोही ☎ (05921) 241479
 जीवन विद्या अध्ययन संस्थान
 ग्राम - टांडा (बिलारी) जिला-मुरादाबाद (उ.प्र.)
- ⇒ श्री सुरेन्द्र पाठक ☎ (0755) 5284235
 ई-5/189, अरेरा कालोनी. भोपाल (म.प्र.)



सुख के भास आभास का कारण ही उसकी निरंतरता के लिए जिज्ञासा है। साधनों का विपुलीकरण सुख की निरंतरता का आधार सिद्ध नहीं हुआ।

न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवहार ही सुख एवं शांति की निरंतरता है। धर्मपूर्ण विचार ही समाधान है, जो संतोष की निरंतरता है।

ब्रह्मानुभूति पूर्ण क्षमता योग्यता एवं पात्रता से सम्पन्न होना ही भ्रम मुक्ति है। यही मोक्ष है। मानव का जड़ की आस्वादनापेक्षा से मुक्त होना एवं प्रेममयता में अथवा सत्ता में अनुभव होना ही मोक्ष है। दया, कृपा, करुणा सहज संयुक्त प्रमाण ही प्रेम है।

